ठाकुर राजबहादुरसिंह देश के जाने-माने
साहित्यकार हैं। बात कहने-करने का अपना
एक अलग अन्दाज़ है उनका
अपने इस नये उपन्यास 'आस-निरास' में
उन्होंने इतिहास के मंच पर
कला की खोज में भटकते एक कवि की
कहानी पेश की है जो आशा
और निराशा, ग़म और खुशी, प्यार
और तिरस्कार की तरंगों में
डूबती-उभरती चलती है
…शैली गंगा-जमुनी—सरल
और गंभीर; भाषा
ललित—नदी का सा प्रवाह लिए…

आस निरास

ठाकुर राजबहादुरसिंह

अनुक्रम

विक्रम की बारहवीं शताब्दी भारत के इतिहास में एक विशेष महत्त्वमण्डित किन्तु दुर्भाग्यपूर्ण सदी मानी जाती है। इसी शताब्दी के साथ भारत की इस पवित्र भूमि पर अभारतीयों और अहिन्दुओं की विजयपूर्ण धाक जम गई; और जयचन्द के जाति एवं देशद्रोह ने मुहम्मद गोरी जैसे लोलुप और महत्त्वाकांक्षी को ऐसा अवसर प्रदान किया कि उसने भारत की फूट से पूरा लाभ उठाया और जहा से वह सत्रह बार पराजित होकर भाग चुका था, हिन्दुओं के पारस्परिक वैमनस्य से लाभ उठाकर, वहीं से न केवल देश का अपार धन, रत्न, आभूषण, स्वर्ण-मुद्राएं एवं अन्य बहुमूल्य वस्तुएं ही लूट ले गया, प्रत्युत् भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज को भी कैद करके अपने साथ ले गया। वहां विदेश में बड़ी शोचनीय दशा में सम्राट को प्राण-त्याग करना पड़ा। हिन्दु-राजत्व के इस प्रकार विनष्ट होने का कारण हिन्दू राजाओं का पारस्परिक कलह था, जिसका दुःखद परिणाम यह हुआ कि बाद में महाराष्ट्रों के चेष्टा करने पर भी हिन्दू राष्ट्र का पुनर्निर्माण नहीं हो सका; और एशिया की इस महान जाति को कई शतियों तक विधर्मियों और विदेशियों का शासित बनकर रहना पड़ा। अशोक और चन्द्रगुप्त के राजत्वकाल के वैभव और अभ्युदय

को भमक सदा के लिए भून के गर्भ में विलीन हो गई।

इस अन्तिम स्वतन्त्र हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज के शासन-काल में अनेक दुर्गुण आ जाने पर भी राजपूतों में से वीरता विलुप्त नहीं हुई थी; और यदि कन्नौजाधिपति जयचन्द संयोगिता के स्वयंवर में पृथ्वीराज का अपमान न करते और पृथ्वीराज संयोगिता का अपहरण न करते, तो भारत का मान-चित्र आज और ही ढंग का बना होता और एशिया के अन्य स्वतन्त्र और प्रगतिशील राष्ट्रों की दौड़ में वह किसीसे पीछे न रहता। किन्तु हुआ वही जो होना था। उन दिनों भी राजपूत जाति में बड़े-बड़े वीर योद्धा थे। बात की बात में प्राण-समर्पण के लिए तैयार हो जाना उनके लिए साधारण बात थी, किन्तु उनके चरित्र में इतनी उग्रता होते हुए भी हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ रहा था। उनमें परस्पर-विरोधी गु थे। उनमें सामूहिक अहंकार—जिसे कि राष्ट्रीय मर्यादा कह हैं—न होकर वैयक्तिक अहंकार की प्रचुरता थी। यदि उन कमी थी तो पारस्परिक सहयोग और सामूहिक संगठन की जिसके बिना अन्त में उन्हें विनाश का आलिंगन करना पड़ा

इस राजपूत युग की कहानी यद्यपि हिन्दुओं के ह्रास की गाथा है; किन्तु फिर भी उन दिनों कई ऐसी प्रथाएं थीं आज के तथाकथित सुधरते हुए जमाने में भी अभिमान बात समझी जाएंगी। उदाहरणार्थ उस युग की स्त्रियों आज की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतन्त्रता थी। वे बिना पर घूम-फिर सकती थीं—युद्धों तक में जाती थीं और स्वयं द्वारा स्वतः अपने जीवनसंगी का चुनाव करती थीं।

जिस समय का वर्णन ऊपर किया गया है, उन दिनों अर्थ समय में ही प्रचलित चौड़े राजमार्गों का अभाव नहीं था

उन सड़कों के किनारे फलदार सघन वृक्ष लगाने की प्रथा थी—बड़, पीपल और आम के पेड़ लगाना परम पुण्य का कार्य समझा जाता था। राजपथ पर जगह-जगह थोड़ी-थोड़ी दूर पर कुआं, बावड़ी आदि जलाशय और पान्थ-निवास थे, जहां जलपान, स्नान, भोजन और विश्राम की पर्याप्त व्यवस्था रहती थी। धार्मिक आस्था अब की अपेक्षा अधिक होने के कारण तीर्थयात्रा अधिक होती थी। व्यापार आदि के लिए रेल आदि आधुनिक साधनों जैसी सुविधा का अभाव होने के कारण लोगों को राजपथ पर ही चलना पड़ता था। सभी यात्री दल बांधकर चलते थे, क्योंकि अकेले-दुकेले डाकुओं का भय था। पारस्परिक वैमनस्य के कारण राजपूतों की शासन-व्यवस्था ढीली हो चुकी थी, जिससे शासनजन्य उपद्रवों का श्रीगणेश हो चुका था। आवा-जाही के लिए सम्पन्न व्यक्ति विशेषतः घोड़ों और रथों का ही आश्रय लेते थे—सभी प्रसिद्ध गांवों और नगरों में स्वरक्षार्थ दुर्ग और फाटक होते थे। समाचारपत्रों का अभाव होते हुए भी समाचार-प्रचारकों का अभाव न था—गांव के नाई और पानवाले या पानवालों की दुकान 'रायटर' की एजेंसी की भांति पूर्ण व्यस्तता और अति-रंजन से स्थानीय सम्वादपत्र का काम कर दिया करती थीं—पर्यटकों द्वारा अन्य नगरों के समाचार भी अनायास ही मिल जाया करते थे। पारस्परिक युद्ध खूब होते थे। इन युद्धों का वर्णन करनेवाले कवि चारण होते थे—इनमें से कोई-कोई चारण तो योद्धा होता था, जो स्वयं युद्ध में भी भाग लेता था। कुछ कोरे कवि होते थे और कुछ सिद्ध तथा जासूसी चारण होते थे।

ऊपर जिस काल और देश की ओर निर्देश किया गया है, हमारे उपन्यास के नायक का उसीसे सम्बन्ध है। जिन चार

प्रकार के चारणों का वर्णन किया गया है उनमें हमारा चरितनायक प्रथम श्रेणी का था। क्षत्रिय जाति में उत्पन्न होकर तथा युग-प्रभाव में आकर उसमें योद्धापन तो आ ही गया था; परन्तु वह था भावुक और कवि। चारण के नाते वह मुहम्मद गोरी के शिविर में भी हो आया था और स्वयं गोरी से मिलकर फारस के सौन्दर्य की प्रशंसा सुन वहां की यात्रा भी कर आया था। भारत के सभी प्रान्तों का वह भ्रमण कर चुका था और अनेक युद्धों में लड़ चुका था। जिस समय जयचन्द ने पृथ्वीराज का अपमान किया और पृथ्वीराज ने संयोगिता-हरण कर लिया, उस समय कन्नौज और दिल्ली के बीच जो भयंकर युद्ध हुआ था और जिसमें एक लड़की के कारण सहस्रों क्षत्रियों का व्यर्थ रक्तपात हुआ था, हमारे चरितनायक ने उसमें जयचन्द की ओर से भाग लिया था। यद्यपि उसने किसी दलबन्दी के कारण ऐसा नहीं किया था, केवल युद्ध-लालसा से बाध्य होकर ही वह अपने मित्रों के साथ चला गया था। इस घटना के बाद हमारे चरितनायक में योद्धापन का व्यक्तित्व समाप्त होकर कवित्व का व्यक्तित्व उदित हुआ।

बाद में जयचन्द ने मुहम्मद गोरी से मिलकर जिस प्रकार भारत में यवनों का प्राधान्य स्थापित कराया और इस प्रकार वह हिन्दुओं के विनाश का कारण बना, उससे हमारे चरितनायक को और भी अधिक ग्लानि हुई और उसने युद्ध में फिर भाग न लेकर अपने काव्य और भावुकता के व्यक्तित्व को आदृत किया। युद्ध में मार-धाड़, रक्तपात और लोगों की क्रोध-क्रिया देखकर उसके मन में जो वैराग्य उत्पन्न हुआ, ...रचना की ओर उसका जो झुकाव हुआ उसमें

उसने हिन्दू जाति के इस पारस्परिक संघर्ष पर परदा डालने के लिए एक वीरतामय महाकाव्य लिखने का संकल्प किया। उसने संयोगिता-हरण की घटना पर अपने विचार केन्द्रीभूत किए और इतिहास में इस अप्रिय प्रसंग को दूसरा रूप देने के लिए अपने महाकाव्य में यह दिखाने का प्रयत्न किया कि क्या होना चाहिए था। क्या हुआ, इसे उसने भुला देना ही हिन्दू जाति के लिए श्रेयस्कर समझा। अपने काव्य में जयचन्द को मुहम्मद गोरी के पास न भेजकर उसने महोबे के दो वीर हिन्दू सरदारों—आल्हा और ऊदल—की सहायता प्राप्त कराई, जिसके द्वारा उसने पृथ्वीराज से अपना बदला चुकाया; और न केवल उनकी कल्पित पुत्री बेला के डोले का हरण कराया, प्रत्युत् उन्हें आल्हा से युद्ध में भी पराजित कराया। किन्तु इस महाकाव्य की भूमिका बाधने में उसकी लेखनी रुक गई थी। उसने सोचा—एक स्त्री के कारण ऐसा घोर अनर्थ! जिसके फलस्वरूप एक महान राष्ट्र का भाग्य ही परिवर्तित हो गया! इस अविवाहित युवक कवि की भावधारा स्त्री को इतना महत्त्व देने को तैयार नहीं हुई। वह फिर विचार में पड़ गया। जिस प्रकार सृष्टि के गर्भ में प्रसववेदना होती है, उसी प्रकार कवि के कल्पना-गर्भ में पीड़ा उत्पन्न होती है और जब तक रचना की रूप-वाणी प्रकट न हो, उसमें वह पीड़ा और तड़प बनी रहती है। कस्तूरी की खोज में दौड़नेवाले मृग के समान ही उसका हाल हो जाता है। हमारे चरितनायक का भी यही हाल हुआ। वह सोचते-सोचते परेशान हो गया, किन्तु लेखनी आगे न चली। उसमें आत्मविश्लेषण का ज्ञान कम था। कन्नौज के राजघराने से सम्बन्धित होने तथा रजोगुण का प्राधान्य होने के कारण वह

आस-निरास

कन्नौज से महोवा जानेवाली सड़क उन दिनों सघन वनों से आच्छादित थी। एक तो राजपथ के दोनों ओर छायादार वृक्षों की पंक्तियां और उसपर भी दोनों पार्श्वों में दूर तक घने जंगल—उस मार्ग में दोपहर को भी अन्धकार छाया रहता था। कुछ तो उन घटाटोप जंगलों में विचरनेवाले हिंस्र जन्तुओं और कुछ मनुष्य-रूपी हिंस्र जन्तुओं के भय से लोग दिन में भी इक्के-दुक्के उधर से कम गुजरते थे। किन्तु सन्ध्या का समय निकट आ जाने पर भी युवक अग्निक उस मार्ग पर आत्मतल्लीन-सा धीरे-धीरे घोड़े को चला रहा था। इस शिथिल गति के तीन कारण थे—एक तो अग्निक की अति-खिन्न मानसिक अवस्था और तीन पहर तक चलते रहने की थकावट; दूसरे, घोड़े के एक पैर से नाल का गिर जाना, जिसके कारण दिन-भर का क्लान्त घोड़ा कुछ लंगड़ाकर चल रहा था; और तीसरे, उस ग्राम का निकट आ जाना, जिसमें ठहरने का उसने विचार कर रखा था।

आज तीन पहर में उसने पचास [illegible]
ली थी और [illegible]

ात्री ने आकाश का रंग बदला हुआ देखा था। क्षितिज प
ांधी आने के लक्षण दीख रहे थे। उस विशाल वन क
ख़रना आकाश के इस रंग से और भी घनीभूत हो चल
ी, किन्तु मानो प्रकृति ने भी इस क्लान्त पथिक पर दय
र दी और वायु के प्रबल प्रवाह ने अपनी दिशा बदल दी
अब आकाश स्वच्छ हो चला था और ग्राम निकट अ
ाने के कारण जंगल का सिलसिला समाप्त हो गया था
ध्यमकालीन सूर्य की किरणें तीसरा पहर हो जाने पर भी
पना प्रखर रूप न त्याग सकी थी।

थोड़ी ही दूर आगे जाकर अगनिक गांव के नाके प
थन एक विशाल वट-वृक्ष के नीचे घोड़े से उतर पड़ा और
ुसने मुस्कराकर तब गांव में जाकर पान्थ-निवास खोजने का
ुचार किया। वृक्ष के निकट ही उस ग्राम का पान्थ-निवास
, किन्तु युवक को यह मालूम नही था। घोड़े से उतरकर
ाने अपनी पीठ पर से सरोद उतारकर नीचे रखा और
मि पर आसन बिछा बैठ गया। वह अभी सुस्थिर भी नहीं
पाया था कि उसके कानों मे गाने की आवाज आने लगी।
ुक ने चकित और आकर्षित होकर सामने की इमारत की
र देखा। आवाज स्त्री की थी; और उसका माधुर्य, लोच
र विरहपूर्ण पदों को एक-एक कर गाने का ढंग, युवक को
बस अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। ज्यों-ज्यों गान
े बढ़ता गया, युवक की उसके स्रोत—गायिका को देखने
उत्सुकता बढ़ती गई। जो पद गाये जा रहे थे वे इस
थे;

ै घूँघरवारी, मैं उसी मार्ग ने आउंगी।
ैे,

पर—एक लड़की पर किसीके आसक्त हो जाने और उ
हरण करने के कारण हो गया। पारस्परिक संघर्ष के क
इतना बड़ा समृद्ध और वैभवशाली देश विदेशियों के
तले रौंदा गया और अपना सब कुछ गंवा बैठा। प
आसक्ति क्या छोटी-सी बात है ? क्या यही संसार की स
बड़ी बात नहीं है। यह भीषण युगान्तर मानो इस
लेखक को उपकरण प्रदान करने के लिए ही हुआ। क्ष
भर में ये सारे विचार एक-एक करके युवक जगनिक के
से इस प्रकार गुजर गए, जैसे एक अद्रुतगामी रथ-चक्र
भीतर से भूमि के टुकड़े-टुकड़े दिखाई दे रहे हों। उस
समूची भाव-भूमिका उसकी आंखों के सामने नाच गई
इसमे कितना समय व्यतीत हो गया, इसका उसे ज्ञान
रहा।

अकस्मात् कवि को मालूम हुआ कि उसका पेट खाल
है। इतनी देर तक विचार-प्रवाह की तरंगों ने जैसे उसकी
क्षुधा को भुलावा दे रखा था। जैसे सारे जगत् के दृश्य
घूमते-घूमते आकाश ने भारी कड़ाह का रूप धारण क
लिया हो—विशुद्ध गव्य घृत मे सूर्य और चन्द्रमा ताज़ी तर्ल
हुई पूरियों के रूप धारण करके निकल रहे हों। तब उसे
मालूम हुआ कि वर्षों से उसे भूख नही लगी—तृप्ति का ज्ञान
उसे नहीं रहा। अब तक एक मानसिक क्षुधा-तृप्ति के लिए
वह इधर-उधर आवारा फिरता रहा था। उस क्षुधा में तृप्ति
के लिए उतनी उत्कण्ठा नहीं थी जितनी तृप्ति के पाने के
[illegible] करने में। परन्तु उस शारीरिक क्षुधा में भी एक

अनुमान टपकता है, तभी तो तीन दिन भी न होकर ढाई दिन पर कट गया है। उसे 'मईदा' के सिलसिले में पाठशाला की याद आई और वह बचपन की बातें सोचने की ओर झुक रहा था कि सहसा भीतर से एक घण्टा बड़े ज़ोर से बज उठा।

युवक बिना किसी विशेष हिचकिचाहट के अन्दर चला गया। बाहर से यह पान्थ-निवास जैसा ऊजड़ दीखता था, अन्दर उसके विपरीत था—परन्तु उसमें सर्वत्र पुरानी ही चीज़ें दिखाई दे रही थीं—जैसे कोई वसन्त ऋतु से लौटकर अकस्मात् शरद् ऋतु में पहुंच गया हो। सारी चीज़ें अतीतकाल के मूर्तिमान स्वप्न की भांति मालूम होती थीं। बचपन से इस यात्री ने महाभारत का अध्ययन खूब किया था—उसके जीवन में जब कभी अतीत का स्वप्न आता, काल की सीमा अतीत में जाकर महाभारत-काल में अटक जाती थी। महाभारत उसकी सीमा बन गया था और आदर्श भी।

इसी समय एक अर्धअनावृत विशालकाय रसोइया रेशमी धोती पहने और हाथ में स्तूपाकार पूरियों से सजी थाली लिए हुए उधर से गुज़रा। सहसा उसे देखकर ऐसा मालूम पड़ा मानो अज्ञातवास में विराट के घर सूपकार का कार्य करनेवाले भीम ही महाभारत के पृष्ठों में से यहां कूद पड़े हों। उसके उघड़े शरीर पर जगह-जगह अस्त्रों के घावों के चिह्न अब भी ताज़े-से दिखाई दे रहे थे। एक विचित्र ... के पान्थ-निवास में एक योद्धा का पाचक होना ऐसा ही ... ो गया जैसे एकसाथ अनेक विचित्रताएं मिलने पर, ... को नष्ट कर सभी साधारण बन जाती हैं। परन्तु ... के लिए तो यह स्वप्नवत् था। जागने पर ही

स्वप्न की आवृत्ति करने पर उसकी विचित्रता मालूम होती है; स्वप्न देखते समय नहीं। जगनिक अभी अपने गम्भीर स्वप्न से जागा नहीं था।

रसोइया उसकी ओर देखे बिना ही चला गया। जैसे उसने इस योद्धा और कवि का अस्तित्व ही नहीं माना। पर युवक ने भी उसे कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया। अब उसकी दृष्टि अन्दर गई। दीवार पर जैसे किसी कारीगर ने कला की दृष्टि से रसोई के बर्तन चुन-चुनकर क्रमशः सजा रखे थे—बटलोई, थाली, कटोरी, गिलास, करछी, पौनी, सडासी, चिमटा—सभी बर्तन स्वच्छता से चमक रहे थे—बीच-बीच में रिक्त जगहों में कुछ ऊपर राम-राज्याभिषेक, मदन-दहन, द्रौपदी-वस्त्रहरण, अशोक, विक्रमादित्य और अनंगपाल के हस्तचित्र टंगे थे। बर्तनों और चित्रों का असंगत सम्बन्ध भी कोई बीभत्सता नहीं उत्पन्न कर रहा था। यह सामंजस्य अनुचित नहीं प्रतीत होता था। भोजन बनाने के बर्तन और यन्त्रादि अतीत काल के इन महारथियों के चित्रों में एक सजीवता भर रहे थे। रूढ़ियों और किम्वदन्तियों ने जो एक दैवी कल्पना इनके विषय में हमारे मनों में कर डाली थी, ये पाक-पात्र उनके पास ही रहकर मानो इस बात की साक्षी दे रहे थे कि इन चित्रों के नायकों को भी भूख-प्यास लगती थी, वे भी खाते-पीते थे और साधारण दैनिक चर्या से परे नहीं थे। वहां की प्रत्येक वस्तु से पुरानापन, किन्तु स्वच्छता टपकती थी। काल के कराल हाथ ने, गलित-पलित जरा-जीर्णता को उस घर के बाहरी भाग में ही छोड़ दिया था; अन्दर जैसे उसका प्रवेश और प्रहार नहीं हुआ था। इस पान्थ-निवास के भीतर काल का प्रभाव तो था, पर उसके नृशंस हथकण्डे

नहीं दीखते थे। उसने जब मन्दर प्रवेश किया था तो उसे लगा जैसे काल प्रत्येक वस्तु का चुम्बन करके ही लौट गया था। ऐसा मालूम होता था जैसे सृष्टि के आदि से ही यह स्थान बना है और सारे संसार की लीलाओं के नायक-नायिकाएं किसी न किसी समय जीवन-संग्राम से थककर उस स्थान में विश्राम और शान्ति के लिए एक बार अवश्य आए हों और यहां की स्थिरता से स्फूर्ति प्राप्त की हो।

युवक यह सब चर्म-चक्षु से नहीं, मानसिक चक्षु से देख रहा था। सारी चीजें अस्पष्ट-सी थीं। स्थूल, जड़ पदार्थ स्मृति और कल्पना के साथ सम्बद्ध होकर अशारीरिक चित्रों को रूप दे रहे थे। जिसका जीवन-स्रोत कई रास्तों से चल चुका होता है और उस स्रोत में कई शाखा-प्रशाखाएं हो चुकी होती हैं, उसकी मृत्यु-यन्त्रणा भी कई प्रकार की होती है। काव्य, संगीत, नाटक और उपन्यासों का व्यक्तित्व एक ओर; युद्ध, हिंसा और लालसाएं दूसरी ओर; प्रेम, आशा, सौन्दर्य और परिष्कृति से प्रभावित होकर सदा परस्पर द्वन्द्व किया करते हैं। काव्य-कला आदि का व्यक्तित्व अहमिका के अंगों का अव्यय करने की निरन्तर चेष्टा करता रहता है। ऐसे संघर्ष के चिह्न इस वातावरण में अतीत शताब्दियों की वाणी की प्रतिध्वनि के साथ खेलते दिखाई देते थे। भूखे यात्री की नासिका उत्सुकतापूर्वक जलते हुए घी की सोंधी सुगन्ध ले रही थी, परन्तु कान उस गानेवाली स्त्री के कण्ठस्वर को फिर से सुनने की उत्कण्ठा में थे। कान छज्जे पर से उस अस्पष्ट झलक दिखा जानेवाली स्त्री के कण्ठस्वर को फिर से सुनने और नेत्र उसे देखने की उत्कण्ठा में थे—उसको सुस्पष्ट रूप से देखने को उत्सुक थे। स्वाद और गन्ध में जो निरविच्छिन्न

सम्बन्ध होता है, उसे स्थापित करने के लिए जिह्वा सजल हो चली थी। त्वचा में लोमहर्ष उत्पन्न होने लगा था—ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वह भविष्य को स्पर्श करने के लिए आतुर हो रहा हो। पंचेन्द्रियों को पंचमुखी दौड़ के ऊपर जिस किसीका आवेग अधिक होता है, क्षण-भर के लिए तो मन उसीके हाथ बिक-सा जाता है। युवक भी इस समय ठगा-सा गया था—वह अपने को ठगनेवाली को देखना चाहता था। इसीलिए उसने रसोइये की ओर ध्यान कम दिया और उससे कोई बात नहीं पूछी।

इसी समय दरवाजा खुला। एक कहारिन जूठी थालियां लिए हुए बाहर निकली। युवक की ओर देखकर उसने मुस्करा दिया। उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे उस कहारिन को कभी कहीं देखा हो। अकस्मात् वह बड़े ज़ोर से हंस पड़ा। कहारिन झेंपकर शीघ्रतापूर्वक चली गई। उधर भीमकाय रसोइये को यह हंसी वज्र-सी लगी। वह शीघ्रतापूर्वक यात्री के पास आकर बोला, "महाशयजी, आप यह ठहाका क्यों मार रहे हैं?"

"कुछ नहीं, यहां की असम्बद्ध बातों पर हंसी आ गई।"

"यहां असम्बद्ध क्या है—क्या आप मुझपर हंस रहे हैं?"

"नहीं, तुम असम्बद्ध कहां हो। महाभारत में तुम्हारा स्पष्ट उल्लेख है। द्रौपदी की प्रतिष्ठा-रक्षा भी तो तुम्हींने की थी।"

रसोइया कुछ आश्चर्यान्वित होकर बोला, "तो क्या आप हमारी मालकिन को जानते हैं?"

"देखा तो नहीं, पर जानता अवश्य हूं और जन्म-जन्मान्तर से जानता हूं।"

रसोइये ने यात्री की बातों में कवित्व की छाप देखकर कहा, "अच्छा, आप कवि मालूम होते हैं—सरोद भी लटका रखा है और तलवार भी। उन्हीं हाथों से प्रेम की सृष्टि करते हैं और उन्हीसे हत्या भी! असम्बद्धता तो आपही के जीवन में स्पष्ट दिखाई दे रही है और हंस रहे हैं हमारे ऊपर? पर भला यह तो बताइए कि इन दोनों में—संगीत और हत्या में—आपका कौन-सा कार्य बड़ा है?"

युवक ने हंसते हुए कहा, "बाहु और पेट में बड़ा भारी सम्बन्ध है। इन्हीं हाथों से तुमने भी हत्याएं की हैं और इन्हीं-से आज जीवन-रक्षा के लिए सुस्वादु खाद्य पदार्थ बना रहे हो!"

रसोइये ने एक सबसे पुराने और गहरे घाव को सहलाते हुए कहा, "इसमें आश्चर्य की क्या बात है महाशयजी? विधाता भी तो यही करता है—एक हाथ से देता है, दूसरे से ले लेता है।"

युवक ने कुछ प्रशंसात्मक भाव से कहा, "यहां तुम्हारे जीवन में भी कोई गुप्त रहस्य अवश्य होना चाहिए। योद्धा से रसोइया, और उसपर कुछ शिक्षा-संस्कार भी; और सबसे बड़े आश्चर्य की बात है इस अज्ञात ग्राम का निवास! ये सब बातें विचित्र इतिहास की ओर संकेत करती हैं।"

रसोइये ने बात को टालने के ढंग से कौशलपूर्वक कहा, "जो बातें अज्ञात हों वही विचित्र मालूम होती हैं। इतिहास विचित्र होता है तो काव्य हो जाता है, और काव्य विचित्र होता है तो इतिहास बन जाता है।"

युवक—"अच्छा, तुम तो दार्शनिक भी हो।"

रसोइया—"नहीं, महाशय! मैं रसोइया हूं। अच्छा अब

यह बतलाइए कि आप चाहते क्या हैं।"

युवक ने भी उसी ढंग से उत्तर दिया, "बात यह है कि वर्तमान का भूत क्षुधित है और भविष्य-तत्त्व का ग्रास करने के लिए बेचैन हो रहा है।"

रसोइया—"बड़े खेद के साथ कहना पड़ रहा है महाशय, कि भोजन का समय बीत गया; रसोई उठ चुकी। भविष्य अब इस मकान के बाहर चला गया। महोबा यहां से पांच ही कोस तो है। अश्वारोही के लिए क्या कठिन है। वहां धर्मशालाएं भी हैं और वहां के कुओं का जल पाचन-क्रिया पर विलक्षण प्रभाव डालता है।"

युवक—"पेट तो खाली पड़ा है और आप पाचन-क्रिया का उपाय बता रहे हैं! इस गांव का आतिथ्य भी तो विलक्षण मालूम होता है!"

रसोइया कुछ अप्रतिभ-सा हो उठा। उसी समय भीतर से आवाज आई—"क्या बात है गजधर? पथिक महाशय क्या चाहते हैं?"

आवाज सुनते ही युवक ने मन में विचार किया, 'वह मारा! कोई भारतीय रमणी भूखे पथिक को इस तरह नहीं भगा सकती।'

युवती सीढ़ियों से उतरकर नीचे आने लगी। सबसे पहले युवक को उसकी कलाई दीख पड़ी, वह हाथ से सीढ़ी के आड़बन्द का सहारा लेकर धीरे-धीरे उतर रही थी। वह कलाई उसके हाथ से कुछ विलग मालूम होती थी। युवक ने ध्यानपूर्वक देखा, युवती की उंगलियां आड़बन्द को इस पोले ढंग से पकड़ रही थीं जैसे मां नहलाते समय अपने बच्चे की गरदन पकड़ रही हो। उसमें शक्ति थी, पर शक्ति में कठोरता

पन प्रभाव था। उसकी पकड़ में अपनाने की ताकत थी। जिस किसी वस्तु को वह पकड़ती होगी वह सदा के लिए उसकी हो जाती होगी। क्षण-भर में ये सब विचार युवक के मन में दौड़ गए और क्षुधा के अनुभव के साथ उसके शरीर में लोम-हर्ष हो उठा। निराशा के दीर्घ निश्वास के साथ उसके मन में यह विचार उठते-उठते विलीन हो गया कि यदि मैं बच्चा होता तो ये हाथ मेरी गरदन को स्पर्श करते !

रसोइये ने युवती के प्रश्न का उत्तर ऐसे स्वर में दिया जैसे कोई बच्चा दुष्कृति करते हुए मां के द्वारा पकड़ा गया हो; बोला, "देवीजी, आप धर्मशाला ढूंढ़ रहे थे, मैंने बता तो दिया है कि यहां···"

युवक ने अवसर देखकर कहा, "देवी ! आपके हाथों से दिरसा टपक रही है। आप दया की मूर्ति मालूम होती हैं। भूखे को क्या इस तरह लौटाया जाता है !"

युवती—"यह ठीक है महाशय, परन्तु आज सवेरे से कम से कम पचीस व्यक्ति भोजन कर चुके हैं···समय हो गया और रसोई उठ चुकी है।"

रसोइया बात का यह रुख अपने अनुकूल देख, गद्गद हो सी हंसी हंस पड़ा, मानो कोई भारी युद्ध विजय करके आया हो। उसे भय था कि यात्री को भोजन देने में आना-कानी करने के कारण कहीं मालकिन अप्रसन्न न हो जाए। अब मालिकन के उत्तर को अपनी ही बातों का समर्थन समझ वह कुछ अकड़-सा गया। संसार में जो शक्ति मनुष्य के भाग्य को गेंद की तरह ठुकराया करती है, उसने एक यह भी अद्भुत नियम बना दिया है कि भला या बुरा समर्थन मिल जाने पर विचारों को उत्तेजना मिल जाती है। रसोइया

तनकर बोला—"यह 'ढाई दिन का झोंपड़ा' संसार-भर में प्रसिद्ध है। सवेरे से शाम तक दूर-दूर से सैकड़ों पथिक इसी रास्ते आते और यहीं भोजन करते हैं—कन्नौज और इन्द्रप्रस्थ से तो नित्यप्रति यात्री आते-जाते ही हैं—काशी, प्रयाग तक के पर्यटक यहां से गुजरते हैं।"

युवक—"हुं! इन्द्रप्रस्थ, प्रयाग और काशी! तुम्हें पता है, मैं कहां से आ रहा हूं।"

अकस्मात् युवती की आंखों में एक उत्सुकता की झलक आ गई। मुंह पर हर्षजनित लाली दौड़ गई। वह झपटकर निकट आते हुए बोली, "आप कहां से आ रहे हैं, महाशयजी?"

युवक—"कहां से आ रहा हूं? मेरे जूते और सिर के बालों की धूलि से पूछिए! किस स्थान से मैंने यात्रा आरम्भ की है उसका छोर यदि मिल सकता, तो कहां जा रहा हूं, यह भी मालूम हो जाता!"

युवती के मुख पर एक हल्की-सी मुस्कराहट खेलते-खेलते अदृश्य हो गई। युवक की लच्छेदार और रहस्यमयी बातें उसके अन्तस्तल में गुदगुदी देकर जिस मुस्कराहट की सृष्टि कर रही थीं, उसको बाह्य शिष्टाचार के ठण्डे हाथों ने मिटा दिया। उसने मुंह फेर लिया और रसोइये की ओर देखकर बोली, "आप तो कवि प्रतीत होते हैं। गजधर, ऐसे यात्री के लिए हमको 'नहीं' नहीं कहना चाहिए।"

बात समाप्त होने के पूर्व ही रसोइया बोल उठा, "अवश्य! दरवाज़े पर आए हुए को भी भला कोई...
है—और यह दरवाजा, जिसमें कभी ताला ही नहीं लगा. महाशयजी एक सम्भ्रान्त व्यक्ति मालूम पड़ते हैं। मैं

कुछ न कुछ खाने को तैयार किए देता हूं। तब तक महाशय-जी स्नान कर लें। बिनिया, ओ बिनिया! अरे स्नान का बन्दोबस्त कर दे।"

युवक ने मन में कहा, 'मैं जब जो चाहता हूं, लेकर छोड़ता हूं—और फिर सुन्दरी! मजाल है कि मुझे न वह दे!"

दो

स्नान आदि से निवृत्त होकर युवक जगनिक जहां भोजन को बैठा उस कमरे में अनेक प्राचीन अस्त्र-शस्त्र लटक रहे थे। उनपर संघर्ष के पर्याप्त चिह्न मौजूद थे, और रसोइये गजधर का नाम छोटे और फंसे अक्षरों में उन सभीपर लिखा हुआ था। भीमकाय रसोइये की युद्ध-शक्ति के परिचायक भीषण अस्त्रों को देखने के बाद जगनिक की दृष्टि दीवार के ऊपरी भाग पर लटकते हुए एक युद्ध-चित्र पर पड़ी, जिसके नीचे 'ललितपुर की लड़ाई' लिखा था। युवक के अहंभाव ने जोर मारा और उसके मन में यह बात आई कि उसे भी चिल्लाकर यह कह देना चाहिए कि वह भी ऐसे युद्धों में भाग ले चुका है। क्षण-भर के लिए उसके कान में युद्ध-क्षेत्र की सारी ध्वनि—अस्त्रों की झनकार, घायलों का चीत्कार तथा घोड़ों की हिनहिनाहट गूंज उठी। अकस्मात् उसे याद आया कि उसका थका-मादा और चोट खाया हुआ घोड़ा बाहर अभी तक वैसे ही बंधा हुआ है।

"महाशयजी, किसको मारने के लिए आप तैयार हो रहे हैं?"

युवक चौंक पड़ा और देखा कि उसका हाथ उसकी तलवार की मूठ पर पड़ा हुआ है। फिर मुड़कर देखा तो बगल में रायता कटोरे में लिए युवती खड़ी थी।

कुछ झेंपते हुए युवक ने कहा, "मैं अपना घोड़ा बाहर ही छोड़ आया हूं।"

रसोइये ने व्यंग्य की हंसी हंसकर कहा, "ऐसे भुलक्कड़ मालिक के घोड़े को ईश्वर ही बचाए!"

युवती ने कुछ तिरस्कारयुक्त स्वर में रसोइये को कहा, "गजधर! घोड़े को मलवाकर उसके दाने-चारे का प्रबन्ध कर दो।" और युवक की ओर रख करके कहा, "आप निश्चिन्त होकर भोजन करें।"

द्रौपदी ने रायता परोस दिया। द्रौपदी युवती का नाम था। फिर उन्हीं उंगलियों और कलाइयों पर युवक की दृष्टि गई। इतने निकट से देखने पर उंगलियों ने दूसरा रूप धारण कर लिया था। वे क्रियाशील और कार्यकुशल मालूम होती थीं। अकस्मात् उसी समय युवक की दृष्टि कमरे के दूसरे छोर पर पड़ी, जहां दीवार पर श्रीकृष्ण के कनिष्ठा पर गोवर्द्धन धारण करने का दृश्य चित्रित था। श्रीकृष्णजी की वही कोमल उंगलियां, जो सुललित बांसुरी की मंजुल तान छेड़कर गोपियों के मन को मोहित करती थीं, ऐसा विशाल पर्वत धारण करने में समर्थ हुईं। युवती की उंगलियों में भी कोमलता के साथ कर्मठता थी। सहसा युवक के मन में युवती का समस्त शरीर [illegible] आकांक्षा जाग्रत् हो उठी। उसके मानस-पर [illegible] न आ सका, यद्यपि उसने [illegible] था।

[illegible] "पीने के लिए कोई

शर्बत लाऊं ? नींबू, नारंगी, अनार, खस और गुलाब के शर्बत तैयार हैं।"

युवक को ऊपर ताकने का एक बहाना मिल गया। उसने रसोइये की ओर न देखकर अपनी दृष्टि युवती द्रौपदी पर डाली; किन्तु अधिक देर तक उसकी नज़र से नज़र न मिला सका। युवती की आंखों के नीचे विषाद-कालिमा की सूक्ष्म रेखाओं पर उसकी दृष्टि पड़ी। युवती विशेष सुन्दरी नहीं थी। सौन्दर्य के साथ पुरुष के विचार में कुछ क्षीणता, लघुता, सुचारुता, अबलापन आदि के चित्र खिंचते हैं। स्वप्नवत्, अस्पष्ट छवि, कुछ कोमलता लिए हुए हाव-भाव से अपने-आपको दूसरों पर निछावर करने के लिए प्रस्तुत, श्रीयुक्त, शीलवती, व्रीड़ावनत, परमुखापेक्षी, दूसरों का सहारा लेनेवाली लता के समान ऐसी स्त्रियों को ही साधारणतः सुन्दरी समझा जाता है। काव्य की नायिकाएं ऐसे ही ढंग की स्त्रियां होती हैं, जो किसी उत्कट अवसर पर हताश होकर रो पड़ती तथा मूर्छित हो जाती हैं; और शक्तिशाली सबल नायक अलंघ्य विघ्न-बाधाओं को तोड़कर उस निरुपाय अबला का उद्धार करता है और अन्त में वह उतने प्रेम से सन्तुष्ट नहीं होता जितना कि अनुगृहीत होने के नाते नायिका उसे देती है, और अन्ततः अपना सर्वस्व अर्पण करती है। पर यह युवती तो ऐसी सुन्दरी न थी। उसकी चाल-ढाल से सौंदर्य, धैर्य और दृढ़ता टपक रही थी। पर वह कुरूप भी न थी। दृढ़-काय, अंग-सौष्ठव में स्फूर्तिवती, पर चंचलता-विहीन थी। वह शारीरिक पार्थिव सौंदर्य, जिसके साथ इन्द्रिय-लिप्सा, अतृप्त लालसा और कामुकता प्रकट होती है, उसमें बिलकुल नहीं था। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था, पर मोहक नहीं

साधारण पुरुष आध्यात्मिक सौन्दर्य को नहीं देखता, वह ऐसी भौतिक रूपरेखाओं पर मरता है जिसमें कि नस-नस में कामुकता का इंगित हो—आदिरस की मुद्रा हो, लालसा का संकेत हो, आलिंगन और चुम्बनोद्यत भाव हों। यौवन और सौन्दर्य के साथ आभूषण, आदान-प्रदान, सुकुमारता, एक ग्राह्य आकर्षण—सारांश यह कि उस सुन्दरता में ऐसी मोहिनी हो जो स्पर्शेन्द्रिय में गुदगुदी पैदा करती है और उसमें भौतिक स्पर्श के लिए चुम्बक के समान खिंचावट हो। परन्तु एक सौंदर्य ऐसा होता है जिसे साधारणतः सौन्दर्य नहीं कहते; जिसमें मादकता नहीं होती। यह सौन्दर्य भौतिक इन्द्रियों से अतीत, त्याग और सेवा की ओर खिंचता है। उससे ग्रहण करने की नहीं, प्रतिदान की भावना उत्पन्न होती है। ऐसा सौन्दर्य युगल प्रेमिकों में अधिक त्याग कर सकता है। लेने का नाम नहीं रहता, केवल दान—स्वेच्छा का दान नहीं, अजलि का समर्पण। पुरुष को माता की स्मृति होती है। वह उदार मातृत्व, जो सहारा देनेवाला और सान्त्वना, परितुष्टि एवं सहज स्नेह की दृष्टि करनेवाला होता है, इस प्रकार की प्रेमिका में होता है। यही कारण है कि उसके प्रेम में मादकता का अभाव होता है।

युवक जगनिक का पार्थिव पुरुषत्व निराश-सा हो गया। काव्यमय जगत में दो मुहूर्त होते हैं—एक ब्राह्म मुहूर्त और दूसरा गोधूलि-वेला। ब्राह्ममुहूर्त में सत्त्व-गुण के अभ्रभेदी शिखर पर एक अव्यय कल्पना का राज होता है, परन्तु गोधूलि-वेला में पार्थिव लालसा के साथ शृंगाररस की तरगों में अस्तमित आलोक की तमोगुणी छाया पड़ती है। युवक जगनिक का योद्धा-व्यक्तित्व विभाजित हो चुका था। अपहरण

और रक्षा करने की प्रवृत्तियां एक-दूसरी से अलग हो चुकी थीं। इस समय अपहरण करने की वृत्ति, उसके कवित्वमय व्यक्तित्व के तमोगुणी अंश से सहयोग करके शृंगाररस के भौतिक आस्वादन के लिए उत्सुक हो रही थीं। जब उसे निराशा हुई तो लेखकों की वृत्तियों में जो एक छुपी हुई चुटकी लेने की लिप्सा बनी रहती है वह ज़ोर पकड़ गई, जिसका आशय यह था कि मेरी आशा पूर्ण न हुई तो तुम्हें भी निश्चिन्त क्यों रहने दूं। इस प्रतिहिंसा-वृत्ति के साथ, युवती के कोई अभिभावक अथवा प्रेम-पिपासु कोई अन्य व्यक्ति भी हैं या नहीं, ईर्ष्या ने इस सम्बन्ध में उसकी खोज की प्रवृत्ति प्रकट कर दी। उसने कहा, "आपके पति महाशय बहुत ही पेटुक —नहीं नहीं, सुरुचिपूर्ण मालूम होते हैं !

युवती—"मेरे पति-वति नहीं हैं, महाशय !"

युवती—"क्षमा कीजिएगा, देवी ! मुझसे भूल हुई, इसका मुझे दुःख है !"

युवती—"दुःख की कोई बात नहीं है।"

युवक ने सोचा, इस देश की स्त्रियां अपने पुत्रों को अपने हाथों से रण-साज में सजाकर युद्धक्षेत्र में भेज सकती हैं। उनके हृदय में पति का मरना साधारण-सी बात है। पर निष्ठुर अवश्य होती हैं तभी तो कहा, 'शोक करने की कोई बात नहीं है।' सम्भव है, वह एक लगनहगा दुर्गंध गवार पुरुष रहा हो। ऐसी स्त्री का पति तो ऐसा ही हो सकता है, पर उसे एक आनन्द-सा अनुभव हुआ कि चलो इसका कोई अभिभावक तो नहीं है—उसका हाथ अपने-आप खुलने और बन्द होने लगा। हथेली में अस्पष्ट खुजली-सी पैदा हो गई। अपने-आपको उस स्त्री का अभिभावक बनाने के लिए वह उद्दीप्त हो उठा।

योद्धा, कवि, पथिक, पाहुना यह सारे व्यक्तित्व एक-दूसरे से संघर्ष करने लगे। अहंकार ने इन सबको पकड़कर एक गठरी-सी बांध ली, इस बलात् सहयोग से दिखाऊ गौरव की उत्पत्ति हुई। गम्भीर भाव से जगनिक ने अकड़कर कहा, "अनार का शर्बत विलासियों के लिए है। गुलाब का शर्बत निस्तेज पुरुषों को क्षणिक उत्तेजना देने के लिए, खस का शर्बत साधारण लोगों के लिए तरी प्राप्त करने के निमित्त है। हां, अंगूर का शर्बत महंगा भी होता है और गौरवोचित भी।"

युवती—"अंगूर का शर्बत नहीं है। उसका आसव बन सकता है, क्योंकि इस देश में अंगूर नहीं होते। और भोजन के साथ आसव नहीं पिया जाता। हमारे विचार से खस का शर्बत ही आपके लिए उपयुक्त होगा।"

युवक के मन में प्रबल इच्छा हुई कि युवती वहां से चली जाए, क्योंकि उसके अहंकार को ठेस लगकर क्रोध उत्पन्न हो रहा था। क्रोध से हृदय का भार बढ़ जाता है, जिसे हल्का करने के लिए हृद्यन्त्र रक्त-संचालन को द्रुत करके मस्तिष्क की ओर फेंकता है। युवक का मुख और कान आरक्त हो रहे थे। मन की भावनाओं को भद्रपुरुष छिपाने की शक्ति रखते हैं, परन्तु विद्रोही शरीर विश्वासघात कर बैठता है। युवक जगनिक भावुकता के साथ आत्मविश्लेषण भी करता जाता था। कुछ विरक्तियुक्त स्वर में उसने कहा, "जैसी आपकी इच्छा!"

युवती चली गई।

मनुष्य की ऊपरी दन्तपंक्ति में दाढ़ के पास एक विशेष दांत होता है। क्रोध के समय लोग उसे पीसते हैं। इसमें दर्द होने पर एक प्रकार का दर्दपूर्ण वांछनीय कष्ट होता है,

गर्मी, पथश्रम को दूर करने के लिए खस का शर्बत ही ठीक है। और उस 'ढाई दिन के झोंपड़े' के वातावरण में किसी विदेशी वस्तु के मिलने की सम्भावना भी नहीं थी। खस तो उसी भूमि की उपज थी। वह पूरे गिलास को पी गया। आंख उठाकर देखा तो युवती चली गई थी। भीमकाय पाचक दीवार पर लटकती हुई एक तलवार पर हाथ फेर रहा था। कहारिन कुछ बर्तन सजा रही थी। अकस्मात् उसे अकेलेपन का भान हुआ, हृदय में कुछ शून्यता-सी मालूम हुई। आत्माभिमान भीतर से ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था कि रसोइये से कह दे कि कुछ ही काल पहले मैं भी युद्धभूमि में था। मैंने भी ऐसे शस्त्र चलाए हैं। कम से कम इस स्थान से मेरा इतना सम्बन्ध तो है; परन्तु न जाने कौन-सी शक्ति उस अन्तरतरा की वाणी का गला घोंट रही थी। अब भोजन छोड़कर उठने का समय हो चुका था, परन्तु हाथ-मुंह धोने के बाद ही उसे चला जाना पड़ेगा, क्योंकि यहां वह किस बहाने और ठहरे! इसीलिए वह उठने में जान-बूझकर देर लगा रहा था और मन ही मन कोई योजना बना रहा था। रसोइये और कहारिन की भाषाएं यद्यपि मूक थीं, फिर भी उनके हाव-भाव से प्रत्यक्ष प्रकट होता था कि किसी तरह यह युवक बला की तरह यहां से टले और वे अपने इस विलम्बित कार्य को समाप्त करके आराम करें। युवक ने उठकर हाथ-मुंह धोया। मुंह पोंछते हुए उसकी दृष्टि सीढ़ी के पास जा पड़ी। युवती द्रौपदी अनमनी-सी सयुक्ताहरण की तस्वीर की ओर देख रही थी। उसकी पीठ युवक की ओर थी। उससे एक प्रकार के द्वारस की रश्मियां निकल रही थीं। कवि की आंखों ने कहा—'इन रेखाओं में वह सुन्दरता नहीं है जिसे देखकर किसी

चित्रकार का हृदय उछल पड़े।' पर उसके हृदय की अतृप्त आकांक्षा और एक अज्ञात व्यथा ने नेत्रों में एक ऐसा प्रसाद-अंजन लगा दिया जिससे ऐसा अनुमान हुआ कि वह पीठ नहीं, गोद है जो थके-मांदे व्यक्तियों के क्लान्त शरीर को शान्ति-दायी शय्या का काम देती है; और यदि इसमें कोई आकर्षण है भी तो केवल सत्पात्र के लिए। वह इस समय अपने को विशिष्ट रूप में सत्पात्र मानने को तो तैयार हो गया, पर दूसरे ही क्षण वहां से जाने की कल्पना ने उसके इस उत्साह पर पानी फेर दिया। वह फिर कुछ सोचने लगा और थोड़ी ही देर में बात अपने मन में जमाते हुए बोला, "श्रीमतीजी, मैं बहुत थक गया हूं; कम से कम पचास कोस पक्का पथ तय करके आया हूं। यदि यहां रहने को एक कमरा मिल जाए तो आज रात…"

"महाशयजी," युवती ने कहा, "यह पान्थ-निवास नहीं है, यह केवल एक भोजनालय है। महोबा यहां से सिर्फ पांच कोस है।"

युवक ने कुछ बिगड़ने का सा उपक्रम करते हुए कहा, "महोबे के बारे में सुन चुका हूं। वहां आप कभी गई भी हैं? वह तो राज-विग्रह और षड्यन्त्र का केन्द्र है। वहां कवि का क्या स्थान हो सकता है! मैं तो अपने काव्य के लिए सामग्री प्राप्त करने ही वहां जाऊंगा और उसके लिए विश्राम पहले कर लेना चाहिए।"

युवती—"महोबे से मैं अच्छी तरह परिचित हूं।"

युवक—"और मुझे आप वहां विश्राम के लिए भेज रही हैं। आप बड़ी निष्ठुर और हृदयहीन मालूम पड़ती हैं!"

उसे इतना क्रोध आया, पर वह गम्भीर अभिमानयुक्त

न होकर ऐसा क्रोध था जैसा बच्चों को हुआ करता है। इसे यदि रूठना कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। कोई उत्तर न पाकर वह बहुत अकड़ और अन्यमनस्कता के साथ बाहर चला गया।

संध्या हो चली थी। पास ही किसी वृक्ष पर क्षीण स्वर से कोयल बोल रही थी—'काली-कलूटी कोयल! बस एक ही तरह की पुकार! मूर्ख कवियों ने इसे बहुत बड़प्पन दिया है। उफ, कितना कर्कश स्वर है! 'ढाई दिन का झोंपड़ा', हृदयहीन युवती, कर्कश स्वरवाली कोयल!…मेरे व्यक्तित्व का जैसे कोई प्रभाव ही नहीं है, जैसे मैं कुछ हूं ही नहीं।'

यही सोचते-सोचते वह घोड़े के पास पहुंचा। घोड़े का शरीर अस्ताचलगामी सूर्य की सुनहली धूप में मखमल के सदृश चमक रहा था। वह अपने खुर जमीन पर पटकते हुए दुम से मक्खियां उड़ा रहा था। युवक के पास आते ही घोड़े ने अपने आसपूर्ण मुख से उसे हल्का धक्का दिया।

"पेटू घोड़े!" कहकर युवक ने उसे एक हल्की चपत जमाई। उसने घोड़े के उस पैर को उठाया जिसकी नाल गिर चुकी थी। देखा, और शरीर में लोम-हर्षण की एक लहर चल पड़ी। झुकी हुई गर्दन सीधी हो गई। चारों खाने चित गिरा हुआ अभिमान लोट-पोटकर एक नवीन उत्साह से उठ खड़ा हुआ, 'अब देखें कैसे यह स्त्री मुझे यहां नहीं ठहरने देती! मैं जब जो चाहता हूं, करके ही छोड़ता हूं!'

उसने इधर-उधर देखा और घोड़े के उस चुटीले पैर को दोनों हाथों से पकड़कर पक्के फर्श पर ज़ोर से पटक दिया। घोड़ा तिलमिला उठा और एक दुःख, आश्चर्य और तिरस्कार-मिश्रित दृष्टि से अपने स्वामी की ओर देखने लगा। खुर से

रक्त बह रहा था, जिसे युवक ने हाथ में लगा लिया।

"अरे, तेरे जरा-से कष्ट से मुझे सुख पहुंचेगा। फिर तो तुझे रोज घण्टों मलयाऊंगा और दूना रातब दिलवाऊंगा।" युवक ने अर्धस्फुट स्वर से कहा।

मस्ती से झूमता हुआ जगनिक फिर अन्दर घुसा। युवती अब भी उसी स्थान पर खड़ी थी।

"श्रीमतीजी," युवक ने ऐसे स्वर में पुकारा जैसे वह दूर खड़ी हो, "मुझे खेद है कि मेरा घोड़ा लंगड़ा हो गया।" और अपनी हथेली को उसकी ओर इस प्रकार कर दिया जिससे वह उसमें लगे रक्त को अवश्य देख सके।

युवती रक्तरंजित हाथ की ओर देखकर बोली, "आपके हाथ में रक्त लगा है। क्या घोड़े का पैर इतना चुटीला हो गया है?"

कण्ठ-स्वर में सहानुभूति थी; परन्तु घोड़े के साथ, युवक से नहीं। आंखें कहती थीं—'खूब समझती हूं! तू जो चाहता है, करके ही छोड़ता है!'

युवक जगनिक ने ऐसी आंखें और भी कई बार, कई जगह देखी थीं।

स्त्रियां आत्मसमर्पण करती तो हैं, पर द्वन्द्व के पश्चात् और इतनी धीमी गति से, जो पुरुषों के लिए असह्य हो उठती है।

युवक ने कृत्रिम निराशा के भाव प्रदर्शित करते हुए कहा, "अब मेरी क्या गति होगी भगवान!"

युवती ने एक रूखी मुस्कराहट के साथ कहा, "योद्धा यदि कवि हो तो उसमें ढिठाई और छल-चातुरी भी आ जाती है। इस प्रकार का सम्मिश्रण उसके बालसुलभ हठीलेपन और

उच्छृङ्खलता को बनाए रखता है।"

जगनिक ने कण्ठस्वर को अत्यन्त मधुर बनाकर चाटुकारितापूर्ण भाव से कहा, "अहा ! बुन्देलखण्ड की स्त्रियां ऐसी आतिथ्यपूर्ण होती हैं ! यही वह भूमि है जहां ग्राम-ग्राम में 'सोने की थारी में जेवन परोसे' के गीत अब तक गाये जाते हैं।"

युवती ने कुढ़ने का प्रयत्न किया, पर न जाने किस प्रकार उसका अंचल उसकी उंगलियों में फंसकर होंठों के पास पहुंच गया। होंठों ने मुस्करा दिया। आंखें तिरस्कारपूर्ण थीं, जो होंठों पर आती हुई मुस्कराहट के लिए रुकावट का काम दे रही थीं।

"अर्थात्," वह बोली, "महाशयजी को रात्रि-निवास के लिए एक कमरा देना ही पड़ेगा।"

'ढाई दिन के झोंपड़े' में केवल एक ही रहने योग्य कमरा था, जो उस युवती का था। युवक ने उसपर अपना कब्जा जमा लिया। जिस छल-चातुरी से उसने वह कमरा लिया था उसपर उसे तनिक भी पश्चात्ताप नहीं हुआ, बल्कि वह कमरे से उसको निकालकर स्वयं उसपर प्रभुत्व स्थापित कर सका, इसके लिए उसने मन में एक प्रतिहिंसापूर्ण परितृप्ति का अनुभव किया, 'बड़ी मालकिन बनी थीं ! ···यह कोई पान्थ-निवास नहीं है ! ···महोबा यहां से पांच ही कोस तो है ! ··· एक थके हुए कवि और दुर्धर्ष योद्धा को थोड़ा विश्राम देने में न मालूम क्या बिगड़ता था ! जगनिक के साथ ऐसा बर्ताव करके कोई पार नहीं पा सकता !'

कवि के मन में कुछ बालोचित हल्का अभिशाप देने की इच्छा भी उत्पन्न हुई कि वह जहां कहीं सोए सुख की नींद न

सोने पाए और रात-भर काफी कष्ट उठाए। उस कमरे की एक-एक वस्तु पुकार-पुकारकर युवती का व्यक्तित्व प्रकट कर रही थी। और युवती के काम की सभी वस्तुएं—शय्या, शृंगार-सामग्री, वस्त्र आदि मानो युवक को उसका सान्निध्य प्राप्त करने का आश्वासन दे रहे थे। युवक जब पलंग पर बैठा—पलंग भी ऊंचा और मोटे गद्दे से ढका, लम्बाई-चौड़ाई में विस्तृत—उसे ऐसा मालूम हुआ कि मानो वह युवती की गोद में ही बैठ गया। युवती के पूर्व-पुरुषों के चित्र दीवार पर इधर-उधर टंगे हुए जैसे एक अज्ञात कुलशील युवक को उस बिस्तर पर देखकर घबरा रहे थे; पर प्रत्येक की मुखाकृति पर एक ठोस धैर्य और अचल शान्ति की झलक थी। कुछ भी हो, वह कोई अवांछनीय व्यक्ति नहीं है। सजावट के जो कुछ सामान थे किसीमें भी क्षीणता या हल्कापन नहीं था। मकान की मोटी दीवार के समान उस कमरे में प्रत्येक वस्तु दृढ़, ठोस और शक्तिशाली थी तथा शान्तिप्रद वातावरण का परिचय दे रही थी। केवल दो वस्तुएं असंलग्न-सी मालूम देती थीं। दीवार की एक ओर भारतखण्ड का एक बड़ा मानचित्र लटक रहा था, जिसमें लाल स्याही की एक लकीर प्रसिद्ध तीर्थस्थानों और नगरों का सम्बन्धन करती हुई खींची गई थी। दूसरी ओर भ्रमण सम्बन्धी हस्तलिखित पुस्तकें रेशमी कपड़ों में बंधी थीं जिनपर उनके नाम सुईकारी के सुन्दर अक्षरों में अंकित थे। युवती का पति कोई बड़ा पर्यटक रहा होगा तभी तो यात्रा के ये साधन बड़ी सम्भाल के साथ रखे गए हैं।

आगन्तुक मन्मथ बहुत थक गया था, परन्तु अब अस्थिर और नहीं था। उसने कई प्रकार की अंगड़ाइयां लीं और

भौतिक जगत् में प्रकट हो जाती हैं। इसीलिए सरोद उसका अभिन्न साथी बन गया था और उसकी रचनाओं में जो एक मौलिक और अनुप्राणित उच्छ्वास था, उसका रहस्य भी यही था। वह कवि होते हुए भी योद्धा था—लेखनी पकड़नेवाला हाथ कभी-कभी भूल जाता था कि 'असि' के स्थान में वह 'मसि' का उपयोग कर रहा है। लेखनी छूट जाती थी। वास्तव में इस महाकाव्य के लिखने में जगनिक ने एक नहीं, अनेक बार कलम तोड़ दी थी। जहां तक वह पहले लिख चुका था, वह सब वीररस से ओतप्रोत था। परन्तु आज आगे लिखने के लिए केवल उस शान्ति की ही नहीं—जिसके साथ मानस-पट पर आलस्य, निद्रा, नासिका-गर्जन, अवसन्नता, बुद्धिहीनता तथा विलासिता से क्लान्त शरीर और मन का चित्र उदय होता है, उस स्थिरता की भी आवश्यकता थी जो समुद्र की तरंग के आकाश के प्रशान्त हृदय के साथ टकराने से क्षितिज के रूप में दृश्य होती है। आज उसके कान में दूर से बजती हुई बांसुरी का क्षीण स्वर सुनाई दे रहा था।···युवक ने सरोद उठा लिया।····"कालिन्दी के तट पर ऐसी ही बांसुरी का स्वर बजने पर गोपियां अपने तन-मन की सुध भूल जाती थीं और अर्धरात्रि में भी उस विकट वन में रास रचाने के लिए दौड़ पड़ती थीं। उस बांसुरी की पुकार में कौन-सा रस होता था? क्या वह करुण-रस से ओतप्रोत किसी बालसुलभ क्षुधित हृदय की पुकार थी जिसे गोपियों का मातृत्व सान्त्वना देने के लिए दौड़ पड़ता था, या उसमें कोई ऐसा शान्त-रस का आवाहन होता था, जो जीवन-संग्राम में थकी और पीड़ित आत्माओं को शान्ति देने का इंगित ··· के जाल में फंसी हुई आत्मा को वह

बांसुरी मुक्ति और स्वतन्त्रता की ओर आमन्त्रित तो नहीं करती थी? श्रीकृष्णजी के चरित्रकारों ने यह नहीं लिखा कि वे कौन-सी रागिनी बजाते थे। लेखकों की त्रुटियां भी कम नहीं हैं—युद्ध के वाद्यों का भी जो वर्णन आया है उनमें राग-रागिनी का पता नहीं है—कर्कश और भयप्रद शब्दों के समूह से ताल तो बन गया, पर उसमें स्वर कहां है? शरीर को मचला देने की शक्ति उसमें होती है, पर मन को नहीं। निम्न श्रेणी के व्यक्ति आज भी ताल-प्रधान गाने गाकर खूब अंग संचालन करते हैं, परन्तु उन गानों में मन को मोहने की शक्ति नहीं होती। श्रीकृष्णजी योद्धा भी थे, और कवि तथा गायक भी। उनके काव्यमय जगत् में भी संघर्ष था, और संघर्षमय जगत में भी काव्य। उनके त्याग में माधुरी थी और उनका शृंगाररस अव्ययात्मक था—तभी तो उन्हें पूर्ण-ब्रह्म कहा गया। उनकी बांसुरी की लुप्त रागिनी के क्षीण और बिखरे हुए अंश इतस्तत. पाए जाते हैं। परन्तु उसके सुनने और समझने के लिए मनुष्य को कोलाहलमय जगत् से हटकर प्रकृति के क्रोड में रहना आवश्यक है। तटिनी के स्रोत में, मेघ के गर्जन में, सागर की उत्ताल तरंगों में, वह्नि की लोलुप जिह्वा में, झंझावात मे, नीलाकाश में, टिमटिमाते हुए तारों में, प्रस्फुटोन्मुख कलियों की सिहरन में, गोरस के मन्थन में, भ्रमर के गुंजार में, कोयल की कूक में, शिशु की अस्फुट वाणी में, माता के वात्सल्यमय स्पर्श में, श्मशान की निस्तब्धता में, अग्नि की राख में···"

"पेटुक की डकार मे, बुड्ढे की खांसी में, सर्दी की छींक में—हुंः, बड़े कवि बने हैं! ऐसी दस-बीस कविताएं तो मैं रोज लिख दिया करूं!"

चौंककर युवक ने देखा। सामने वही भीमकाय रसोइया दूध का कटोरा लिए खड़ा था। अब उसे ज्ञात हुआ कि वह अपने मनोभावों को मुंह से प्रकट कर रहा था। अलौकिक जगत् की सूक्ष्म वैतरणी की तरंगों को, प्रकृति के पंचभौतिक गर्भस्राव का स्थूलरूप यह विशाल हाथी, अवरुद्ध करने के लिए आ धमका। पुराणों में भी ऐसे ही किसी हाथी का उल्लेख है जिसने व्यासदेव के काल्पनिक जगत् को धक्का पहुंचाया होगा, तभी तो उन्होंने गंगाजी के साथ उस विवाहोत्सुक हाथी की कहानी लिखी है जिसने उनकी विचारधारा को रोकने का प्रयत्न किया था। ऐसे ही जल-भुनकर महाकवि व्यास ने उसकी कल्पना की होगी। अन्तर यह है कि पुराणों में वर्णित हाथी गंगाजी के स्रोत में बह गया था और यहां उसे सफलता मिली। शास्त्रों में जहां कभी कोई यज्ञ या शुभ कार्य का वर्णन आया है वहीं उसे भंग करनेवाले राक्षस और दैत्यों का भी उल्लेख पाया जाता है।

युवक ने रसोइये पर सिर से पैर तक एक दृष्टि डाली। उसके हाथ से दूध का कटोरा छीनकर एक सांस में पी डाला और फिर कटोरे को नीचे फेंक दिया।

"बेचारे निर्जीव पात्र पर इतना क्रोध!" कहती हुई युवती वहां आ पहुंची।

जगनिक ने युवती की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा और अपने अधूरे लेख की ओर देखने लगा। उसने 'श्मशान की निस्तब्धता' और 'अग्नि की राख' को काट दिया और उसकी निराशा की बांसुरी में आशा की रागिनी फिर से बज उठी। उसने आगे लिखा, "यौवन की मादकता में, षोडशी के कण्ठस्वर में..."

युवती ने मुस्कराकर कहा, "योद्धा ने कटोरा फेंक दिया, कवि ने लेखनी संभाली, पर भलेमानुस कहां हैं ?"

युवक ने लेखनी रोक दी और कहा, "सौन्दर्य के सामने ज्ञान का ठहरना सम्भव नहीं।" और कलम रखकर फिर बोला, "क्षमा कीजिएगा, देवी ! जब कोई बहुत ऊंचाई से गिरता है तो उसे अपने-आपको संभालने में कुछ देर लग ही जाती है।"

युवती ने जगनिक की सफाई पर ध्यान न देते हुए कहा, "मैंने पशु-चिकित्सक को बुलवाया था। उसका निदान है कि घोड़े के खुर से नाल गिर जाने पर भी उसे चलाने के कारण उसके खुर में घाव-सा हो गया था। नाल की एक कील किसी कारणवश खुर में धंस गई थी, जिसे अच्छा होने में कम से कम दस-पन्द्रह दिन लग जाएंगे।"

युवक ने कुछ मुस्कराकर सहज भाव से कहा, "मैंने उसके खुर को पकड़कर काफी ज़ोर से फर्श पर पटक दिया था, जिससे कील इतनी धंस जाए कि अच्छा होने में कुछ देर लगे।"

वाक्य समाप्त होते ही युवक ज़ोर से हंस पड़ा और उसने युवती के नेत्रों की ओर देखा, जिसमे तिरस्कार का भाव था।

युवती ने रूखे स्वर मे कहा, "यहां कोई घोड़ा बिकाऊ भी नहीं है।"

युवक ने अंगड़ाई लेते हुए कहा, "यह तो और भी अच्छा हुआ।"

युवती ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी वाणी मूक थी, परन्तु शरीर के अंग-प्रत्यंग बहुत कुछ कह रहे थे। उसके शरीर की मुद्रा और मुख के भाव मे भेद था।

युवक जगनिक के हृदय से निराशा का एक श्वास नि
गया। वह सीमाबद्ध लेखक क्यों हुआ, चित्रशिल्पी होता
इस समय उस रमणी के भाव और मुद्रा के अन्तर को स
चित्रित करने मे सफल होता। बेचारा लेखक उस अस
मूक वाणी को किस प्रकार प्रकट करे! युवक के मन
बालोचित प्रतिहिंसा लेने पर एक आनन्द-सा आ रहा था
युवती ने उसमें 'उच्छृङ्खलता और बचपन' होने की बात क
थी। परन्तु अब वह इतनी देर से जिस प्रकार निश्चल सा
रही, उसे उद्धतता का द्योतक समझ युवक को क्रोध आ
गया। उसकी इच्छा हुई कि उसे पकड़कर जोर से झकझो
दे। युवती ने आँखें दूसरी ओर फेरकर कहा, "महाशयजी
तो अब महोवे की ओर ही जाएंगे न?"

युवक ने चिढ़कर कहा, "महाशयजी महोवे की ओर
नहीं जाएंगे। वे श्रीमतीजी के कमरे में ही ठहरेंगे। मैं जानता
हूं, श्रीमतीजी क्या कहेंगी। वे कहेंगी, 'यह युवक बड़ा ही
उच्छृङ्खल और हठी है। मेरे कमरे पर अधिकार जमाए बैठा
है। कहां मैं 'ढाई दिन के झोपड़े' की मालकिन और कहां यह
भटकता हुआ पथिक, जो छल-चातुरी और हठ से यहां आकर
रोब जमा रहा है।' पर मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है। मैं
आपसे स्पष्ट कहे देता हूं कि महाशयजी को श्रीमतीजी का कमरा
बहुत पसन्द आ गया है। शय्या इतनी सुखद है कि सारे जीवन
में कल रात को ही मैं सुख की नींद सोया हूं, और आपमें यदि
रमणी-हृदय होता तो मुझे सुख पहुंचाने के लिए अपने आ-
से ... त्याग में आपको भी आनन्द मिलता।"

... ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "महाशयजी में दुख का
... दिखाई नहीं देता।"

युवक ने कहा, "शिष्टाचार और भद्रता मानसिक दुराचारों को छिपाने की कला को ही कहते हैं। मुझे भी ऐसा विश्वास नहीं है कि मैं दुःखी हूं, पर अपने-आपको किसी अज्ञात कारण से दुःखी समझना, किसी अज्ञेय ध्येय की ओर दौड़ना, किसी अज्ञात वस्तु को प्राप्त करना भी तो सभ्यता के लक्षण हैं।"

युवती ने प्रशंसात्मक भाव से कहा, "आप सब कुछ देखे-सुने मालूम पड़ते हैं और आपके पास है भी सब कुछ।"

"सब कुछ!" कहकर युवक कवि हंस पड़ा। वह कहना चाहता था, इस 'सब कुछ' में कुछ नहीं है। इन्हीं 'सब कुछों' से जब वह आकण्ठपूरित हो जाता है तो मृगभक्षी अजगर की भांति निर्जीव और शिथिल हो जाता है। महाकवियों ने नवरस ही सोचे थे, परन्तु दसवां रस है, जड़ता। पर इस ग्रामीण स्त्री की समझ में ये बातें क्या आएंगी। यह तो केवल संतोष और निश्चिन्तता की ही बातें समझ सकती है। बहुत छोटी और साधारण कल्पना के साथ इसका जीवन व्यतीत हुआ है। यह क्या समझेगी कि मनुष्य का काल्पनिक स्वप्न ही सच्चा है और वास्तविक घटनाएं मिथ्या है, और जिस समय सांसारिक सफलता उस स्वप्न का गला घोंट देती है उसका क्या परिणाम होता है? मनुष्य मे मनुष्यत्व नहीं रह जाता। यह रमणी तो इतनी सीधी-सादी है कि सम्भवतः इसके जीवन में काल्पनिक स्वप्न का कोई स्थान ही न होगा।

उसने युवती की ओर ध्यान से देखा। वह मानो शान्ति और सन्तोष की प्रतिमा बनी हुई थी। युवक चिढ़ गया। जब जगनिक ऐसा बेचैन हो रहा है, किसीको इस प्रकार शान्त, सुस्थिर और सन्तुष्ट रहने का कोई अधिकार नहीं

है। यह शिष्टाचार-विरुद्ध भी है। किसीके दुःख के समय शिष्ट व्यक्ति अपना सुख प्रकट नहीं करते…'जब मैं दुःखी हूं तो इसका शान्ति-प्रतिमा बनकर सामने खड़ी रहना अशिष्टता है। ग्रामीण स्त्री तो है ही—क्या जाने शिष्टाचार। गंवार के साथ मैं भी गंवार बनता हूं।'

एक अस्पष्ट व्यंग्य के रूप में युवक ने पूछा, "श्रीमतीजी के आले में सुन्दर पुस्तकें हैं। क्या श्रीमतीजी प्राकृत पढ़ लेती हैं? उसमे पर्यटन-सम्बन्धी पुस्तकें ही अधिक मालूम होती है।"

युवती के कपोलों पर गुलाबी झलक दौड़ गई। "हां, थोड़ी-बहुत प्राकृत जानती हूं," उसने कहा, "युद्ध से लौटे हुए चारण इस रास्ते प्रायः जाया करते हैं और एक-दो पुस्तकें दे जाते हैं। दूर-दूर के पथिक भी कभी-कभी आ जाते है और इस स्थान पर मुग्ध होकर अपना कोई न कोई चिह्न छोड़ जाते हैं।"

युवक और युवती के बीच में जो एक सूक्ष्म और अर्थहीन झिझक की दीवार खड़ी हो गई थी, क्रमिक व्यवहार से उसका ठोसपन धीरे-धीरे दूर होने लगा। उस दीवार का अस्तित्व तो अब भी था, पर वह कांच की सी पारदर्शी बन गई थी। उस स्फटिकवत् स्वच्छ पट पर अकस्मात् रंग-बिरंगे फूलों की छाया दिखाई देने लगी। इस रंगीन आभायुक्त स्वच्छ दीवार से छनकर वह नयनाभिराम छाया, युवक की मानसिक दृष्टि को भेदकर उसके हृदय पर पड़ गई और एक नवीन सौन्दर्य की झलक उसे दिखाई देने लगी। उसने सोचा—जिस समय इन पुस्तकों के रचयिता इस स्थान पर आते-जाते रहे होंगे, यह एक छोटी-सी बालिका रही होगी। उसका जन्म ही न हुआ होगा। इस सुदूरभूत की कल्पना को उसने अपने मन में

यान नहीं दिया। 'ढाई दिन के झोंपड़े' को इस युवती से हित देखने की बात वह कल्पना में भी नहीं ला सका। ज्ञात भ्रांत पथिकों में समवाय-सम्बन्ध स्थापित करनेवाले ौर देश, काल, पात्र के आवरणों को तोड़कर एक कर देने-ाले इस झोंपड़े ने कुछ काल के लिए सबका पथ-श्रम दूर किया होगा।

युवक ने फिर पूछा, "और वह मानचित्र! मालूम होता है, श्रीमतीजी ने खूब भ्रमण किया है?"

"हां," युवती ने कुछ मुस्कराकर कहा, "महोबे तक हो आई हूं!"

"तो," युवक ने पूछा, "क्या वह मानचित्र आपके पति महाशय का है?"

चकित हरिणी की तरह चमकते हुए नेत्रों को युवक के नैनों से मिलाते हुए युवती ने कहा, "मैं कह चुकी हूं मेरे कोई पति-वति नहीं हैं!" और हरिणी के ही समान द्रुतगति के साथ वहां से चली गई।

वगनिक ने आंख उठाकर देखा, कलियुगी भीम-से रसोइया महाशय अपने मूसी के समान बड़े-बड़े दांत निकाल-कर खिड़की के पास से कह रहे थे, "श्रीमतीजी तो कुमारी हैं। जब उनके पति हैं ही नहीं, तो उनकी यात्रा का क्या प्रश्न है? सैकड़ों वर्षों से इस स्थान पर श्रीमतीजी के पूर्वजों का अधिकार है, और अपने वंश की ये अन्तिम संतान हैं। हजारों राजा-रईसों और गुणी योद्धाओं ने श्रीमतीजी के साथ विवाह करने के प्रयत्न किए हैं।"

रसोइया एक पैने चाकू से शिमलेन्द छीलते हुए मुंह बनाकर यह बात कह गया। वह एक-एक शब्द पर जोर

देकर चाकू ज़िमीकन्द पर चला रहा था। बात समाप्त करने के लिए छिलके बटोरकर खिड़की से बाहर फेंकते हुए कहा "श्रीमतीजी विवाह की प्रतीक्षा में नहीं बैठी हैं। कौन कह सकता है कि स्त्रियां किसकी प्रतीक्षा में बैठी रहती हैं!"

जैसे युवक के भाग्य में छिलके ही बदे हों!

किन्तु युवती के अविवाहित होने के संवाद से युवक जगनिक के हृदय में हर्ष की गुदगुदी-सी उठी। जैसे कोई बोझ हल्का हो रहा हो। अब वह कांच की दीवार भी न रही, परन्तु उसकी रंगीन आभा और भी दीप्त हो उठी। युवती के काल्पनिक पति से उसे एक भयंकर विद्वेष-सा हो गया था। उसे अनुपस्थित देख उसकी मृत्यु की कल्पना भी उसने सहज ही में कर ली थी, परन्तु अब उस मुर्दे का भूत भी न रहा।

जगनिक द्रुतवेग से घोड़े के पास जा पहुंचा। घोड़े का चिकित्सक जाने की तैयारी में था। युवक ने उससे पूछा "कितने दिन अच्छे हो जाने में लग जाएंगे?"

अश्ववैद्य ने कहा, "कम से कम दस दिन। परन्तु अच्छे हो जाने के बाद भी जानवर को कुछ आराम मिलना चाहिए तभी वह दूर की यात्रा में जा सकेगा।"

युवक ने अपने बटुए से कुछ मुद्राएं निकालकर कहा, "जितनी ही देर हो उतना ही अच्छा—आपके शुल्क के लिए भी।"

चार

विचार-विनिमय जीवधारी-मात्र की पुरानी आदत है। . . की बारहवीं शताब्दी में दलालों का नितान्त अभाव

तो नहीं था, पर कमी अवश्य थी। वस्तु या विचार के विनिमय में दलालों की इतनी प्रधानता न थी जितनी आज-कल है। किन्तु उस समय भी एक सीमित रेखा के भीतर इधर-उधर के सम्वाद रोचकता के साथ फैलाए जाते थे। समाचारपत्रों के न होते हुए भी दो प्रकार के 'प्रेस-ट्रस्ट' उस समय भी ऐसे थे जो इस दिशा में पर्याप्त व्यस्तता दिखलाते थे। इनमें पहला 'प्रेस-ट्रस्ट' तो गाव का नाई था जो घर-घर अनायास सम्वाद पहुंचा जाया करता था, और दूसरी संवाद-एजेन्सी पानवाली की दुकान होती थी, जहा सन्ध्या को सभी लोग पहुंचते थे और पान खाने के साथ उन दिनों के सीमित संसार के समाचार सुन आते थे।

'ढाई दिन के झोंपड़े' से थोड़ा आगे चलकर उस गांव की प्रसिद्ध पानवाली की दुकान थी। पानवाली वैसे भी सुन्दरी थी। न जाने प्रकृति की किस अज्ञात रहस्यमयी लीला के फलस्वरूप एक साधारण नियम-सा बन गया है कि जो वस्तु सबको प्रिय होती है, उसका विक्रेता भी प्रियदर्शी हो जाता है। जौहरिनें, ग्वालिनें, नाइनें और पनवाड़िनें—ये प्रायः सुन्दर ही होती हैं।

सन्ध्या का समय था। जगनिक धीरे-धीरे टहलता हुआ पानवाली की दुकान पर पहुंचा। पानवाली ने स्वल्प मुस्कराहट के साथ उसका अभिवादन किया।

इस गांव के सभी व्यक्ति विचित्र मालूम होते थे। जैसे यहां विचित्रता का ही राज्य हो। पानवाली भी विचित्र थी। 'ढाई दिन के झोंपड़े' की स्वामिनी से अधिक सुन्दरी और चंचल थी। हां, कृत्रिम हाव-भाव के कारण वह मोहिनी भी थी। उसके सौन्दर्य में मादकता की मात्रा अधिक थी।

युवक ने उपेक्षा की दृष्टि से सोचा—इस मादकता में स्थूलता है। यह पंचेन्द्रियों तक ही टकराकर लौट आती है। और मन के उस स्तर को ही आकंपित कर सकती है जिसके साथ भौतिक स्मृतियों का सम्बन्ध है। परन्तु इसपर भी उस ग्राम के वातावरण के समान पानवाली पर स्थानीय प्रभाव था। उसके स्वागत-अभिवादन में, पान लगाते समय अंगुली-संचालन में, पान देने की मुद्रा में, एक पथ चलते पराये पुरुष पर अपनेपन की छाप लगा देने का *व्यंग्य था।* जैसे युवक जगनिक भी उन सैकड़ों ग्राहकों में से एक था, जिनमें से प्रत्येक को उसने व्यक्तिगत रूप से इसी प्रकार अवैयक्तिक इंगित द्वारा अपनाने की चेष्टा की थी। युवक के अहंकार को, जिसे उसने अब तक आत्ममर्यादा समझ रखा था, एक ठेस-सी लगी।

पानवाली युवती ने मुस्कराते हुए पान देकर कहा, "यह आपका सौभाग्य है कि द्रौपदीदेवी ने आपको रहने के लिए *स्थान दे दिया।"*

युवक ने सोचा, 'वास्तव में उस भीमकाय रसोइये को देखते हुए युवती का प्रचलित नाम 'द्रौपदी' उचित ही है। भीम और अर्जुन के सिवा शेष तीनों पाण्डवों का अधिकार द्रौपदी पर क्यों हुआ ? यह व्यासजी का महाअन्याय है। भीम तो वहां पहले से था ही, और मामूली नौकर था, इसलिए उसका रहना आपत्तिजनक नहीं था। अर्जुन का स्थान जगनिक ले सकता था, और उससे भी अच्छे रूप में, क्योंकि अर्जुन कवि नहीं थे, केवल योद्धा थे—जगनिक में कवि और *योद्धा का संयुक्त व्यक्तित्व था।'*

पानवाली न जाने क्या-क्या कह गई थी और उसी

सिलसिले में बोलती जा रही थी, "वे पथिक जो शीघ्रतापूर्वक यहां से चले जाते हैं, इसको एक साधारण गांव, और 'ढाई दिन के झोंपड़े' को एक भोजनालय-मात्र समझते है, वे कुछ नहीं जानते। परन्तु हम लोगों के लिए द्रौपदीदेवी और 'ढाई दिन का झोंपड़ा' बुन्देलखण्ड के प्राचीन केन्द्र हैं।"

युवक अकस्मात् बोल उठा, "निस्सन्देह!"

पीछे से किसीने कहा, "अद्भुत रमणी-रत्न है!"

कहने के साथ ही उस व्यक्ति ने मुंह से ऐसा शब्द किया जैसे कोई सुस्वादु चटनी चाट रहा हो।

उस शब्द और वाक्य का एक ऐसा अश्लील सम्बन्ध युवक के मन में स्थापित हो गया कि उसका हाथ तुरन्त तलवार की मूंठ पर जा पड़ा। झटके के साथ उसने घूमकर देखा—गांव का नाई था। नाई अवश्य होता है। वाचालता और छिद्रान्वेषण इस जाति का जन्मसिद्ध अधिकार है। जाति के अन्य व्यक्तियों की भांति यह नाई भी झूठ-सच मिलाकर रोचक बातें बनाने का चिर-अभ्यस्त था। जितनी स्वतन्त्रता काले को सफेद और सफेद को काला बनाने की राजपुरुष को होती है, उससे भी अधिक स्वतन्त्रता उस गांव में उसे थी। ग्राम-जीवन का यह नारद, वीणा बजाकर सिर-फुड़ौवल भी करा सकता था, और शादी-व्याह जैसे मंगल-कार्य भी। युवक की एक दूसरी चिढ़ ने इस छत्तीसे की धृष्ठता-जनित अनुचित बात से उत्पन्न चिढ़ को कम कर दिया। यह दूसरी चिढ़ इस बात पर थी कि जिसे देखो वही द्रौपदीदेवी की प्रशंसा करता है—जैसे अपने सारे गांव पर ही उस अनोखी युवती का पूर्ण प्रभाव और अधिकार हो। उसके विषय में कुछ भी कहने का अधिकार ग्रामवासियों को क्यों

होना चाहिए ! युवक के अहंकार को भी कुछ ठेस लग गई। वहां से मन ही मन कुछ रूठकर वह आगे बढ़ गया।

एक मिठाईवाले की दूकान पर जाकर कुछ मिठाई खरीदी। मिठाईवाले ने भी मुंह बनाकर विचित्र भाव-भंगी से कहा, "श्रीमानजी, आप बड़े भाग्यवान हैं। 'ढाई दिन का झोंपड़ा' एक विचित्र स्थान है। और उसकी मालकिन…"

यह कहकर हलवाई ने ऐसी मुख-मुद्रा बनाई जैसे कोई परम स्वादिष्ट मिठाई चख रहा हो। परन्तु चटनी के चखने में न जाने क्यों एक प्रकार की जिस अश्लीलता का भाव होता है, वह भाव हलवाई की मुद्रा में नहीं था। फिर भी युवक कुछ चिढ़-सा गया और केवल एक 'हुं:' कहकर उसके पैसे फेंक चलता बना। वह सोचने लगा—एक छोटी जगह में कोई भी आकर्षक व्यक्ति शीघ्र विख्यात हो जाता है।

गांव से थोड़ी दूर पर स्थित नदी के किनारे जाकर उसने मिठाई खाई और फिर सोचने लगा—आज मैं ब्यालू के लिए वहां नहीं जाऊंगा। मैं स्वतन्त्रता का पुजारी हूं, किसीके भरोसे थोड़े ही रहता हूं। जब मैं नहीं लौटूंगा तो उसके मन को ठेस पहुंचेगी, वह चिन्ता में पड़ जाएगी। सम्भव है मुझे ढूंढ़ने के लिए आदमी भेजे।…नदी का किनारा कितना सुन्दर है !…सम्भव है वह स्वयं ढूंढ़ती हुई इधर आ निकले।… उं: ! बड़ी 'ढाई दिन के झोंपड़े' की मालकिन बनी है ! सारे गांव में अपनी धाक जमा रखी है।… अच्छा, इतने बड़े-बड़े और प्रसिद्ध यात्री इधर से आते-जाते रहे हैं, पर किसीने इस स्थान का उल्लेख क्यों नहीं किया ?…उं:, इस सड़े-से गांव को पूछता ही कौन है !…परन्तु यह 'ढाई दिन का झोंपड़ा' तो ऐसा अकड़कर खड़ा है जैसे मेरुदण्ड को सीधा

किए समाधिमग्न हो रहा हो। यह महाकाल रुद्र की सी समाधि मालूम होती है—उस महासमाधि के ही कारण शिव का नाम स्वयंभू पड़ा—अपने-आपमें मग्न, और सबमें रहते हुए भी सबसे परे, भीड़ में रहते हुए भी एकान्त।···आश्चर्य है कि किसीने ऐसे महत्त्वपूर्ण झोंपड़े का उल्लेख नहीं किया। परन्तु शायद यह झोंपड़ा किसीके उल्लेख की अपेक्षा और परवाह भी नहीं करता। इसका वातावरण ही ऐसा है कि इसे संसार की परवाह नहीं है—यह अपने-आपमें ही मस्त है। परन्तु स्मृतियां तो अपनी नहीं होतीं, वे तो पराई वस्तुओं के साथ ही सम्बन्ध रखती है। इस झोंपड़े की भी तो कुछ स्मृतियां होंगी। उन स्मृतियों की भी तो वह पुनरावृत्ति करता होगा—नहीं, नहीं, 'करती होगी'···द्रौपदी करती होगी, झोंपड़ा तो निर्जीव वस्तु है। न जाने अतीतकाल में संसार की कौन-कौन-सी क्रान्तिकारी घटनाओं की छाया इस झोंपड़े पर पड़कर चली गई होगी। खैर, अतीत तो व्यतीत बन चुका है, पर यह झोंपड़ा अब भी पूर्ववत् खड़ा है और यह अमर युवती भी। जिस दिन वह यहां से हटेगी, झोंपड़ा टूटकर गिर जाएगा। इतना स्थायित्व भी अच्छा नहीं। कोई आश्चर्य नहीं, जो इस युवती के रोम-रोम से सन्तोष झलकता है। स्थायित्व जीवन, और गतिशीलता मरण है। यदि मैं भी इस युवती की तरह रह सकता तो सम्भव है खोए हुए अपने-आपको ढूंढ़ सकता और मेरी बद्ध लेखनी, जो संसार की निर्ममता से रुक गई है, शायद फिर चल पड़ती। फिर तो मैं संसार को एक ऐसा महाकाव्य देता जैसा इसके पूर्व उसने कभी नहीं देखा था—मेरी हृदय-वाटिका, जो एक अज्ञात कल्पनामयी छाया की प्रतीक्षा में

मुरझा-सी गई है, फिर से लहलहा उठती। होगी, मेरी रचना पूरी होगी। अवरुद्ध लेखनी चलेगी और पूरे वेग एवं प्रवाह से आगे बढ़ेगी।···

एक मोलश्री के तने के सहारे से टिककर अपने अस्थिर जीवन में जगनिक कुछ सान्त्वनापूर्ण स्थिरता का अनुभव कर रहा था। कुछ प्यास-सी लग रही थी। समझ में नहीं आया कि यह भौतिक प्यास थी या मानसिक। अंगूर के बदले उसने रस का शर्बत दिया था। उसने समझा होगा कि कीमती चीज़ मांगकर युवक शान जमाना चाहता है, पर मैं प्रमाणित कर सकता था कि यह बात नहीं थी। अंगूर जो तृप्ति दे सकता है, यह एक ग्रामीण स्त्री क्या जान सकती है।

···आज भोजन क्या बना होगा। कोई विशेष स्वादिष्ट पदार्थ युवती ने अपने हाथों अवश्य बनाया होगा, और मैं समय पर पहुंचा होता तो अपने ही हाथों परोसती भी। आज मैं उसे पास ही बैठने को भी कहता। 'ढाई दिन के झोंपड़े' का क्या इतिहास है, यह भी पूछ लेता—नहीं, कभी न पूछता! इससे तो उसे यह उत्साह मिल जाता कि कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें जानने के लिए जगनिक उसका आश्रय लेने को उत्सुक है—आत्माभिमान से वह फूल जाती। जैसे वह मुझे कुछ बता सकने की क्षमता ही रखती हो!···मैं कवि हूं, मेरी कल्पना की उड़ान अनन्त के छोर को ढूंढ़ लाती है। मैं बिना उसकी सहायता के भी अपना महाकाव्य पूरा करने की क्षमता रखता हूं और करके रहूंगा! यदि यहां जमने का जुगाड़ न हुआ तो और कहीं को प्रस्थान कर दूंगा, पर महाकाव्य लिखने के लिए जैसा एकान्त और वातावरण

चाहिए, प्राप्त करके रहूंगा।...

सोचते-सोचते युवक का शरीर आलस्यपूर्ण हो चला और वह धीरे-धीरे खिसककर अर्धशायी हो गया। उसकी दृष्टि नदी की बहती हुई धारा पर पड़ी। इस नदी का स्रोत अकारण ही किसीकी ओर अविराम दौड़ता रहता है। मेरे जीवन का स्रोत भी ऐसा ही है। इस अस्थिरता की ओर एक वितृष्णा-सी हो गई।...आज तो यहीं पड़ा रहूंगा, चाहे कुछ हो।...कैसी हृदयहीन है। इतनी देर हुई, इतना भी नहीं हुआ कि मुझे ढूंढ़ने के लिए गजधर को भेज देती। मैं इसकी कठोरता से तंग आ गया हूं। देखना है लौटने पर कैसा व्यवहार करती है।...

इसी तरह की विचार-तरंगों में प्रवाहित होते-होते उसे निद्रा आ गई।

एक लम्बी नींद लेने के बाद जब जगनिक की आंख खुली तो चन्द्रमा की स्निग्ध रश्मि-धाराएं नदी की हल्की-हल्की लहरों के साथ अठखेलियां कर रही थीं। कोई दूर से कर्कश स्वर से बेसुरा राग आलाप रहा था :

"चुन-चुन कलियां मैं सेज बिछाऊं!..."

युवक की पीठ में कुछ चुभ रहा था। उसने करवट बदली। उसे स्मरण आया कि वह अभी तक नदी के किनारे ही पड़ा है। मौलश्री के फूलों की भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी। नदी के प्रवाह की ओर से किसी मधुर कण्ठ के सुन्दर गाने की आवाज़ धीरे-धीरे निकटतर आती प्रतीत हो रही थी। युवक अकचकाकर उठ बैठा। एक छोटी-सी नाव दूर से चली आ रही थी। हवा के एक सीधे झोंके ने गानों के स्वरों को सुस्पष्ट करके उसके कानों के पास ला दिया :

"मेरो जोबन बीतो जाय,
बुंदेला वेगी भइयो रे !...."

इसके बाद ही वायु के प्रतिकूल प्रवाह ने गाने के स्वर को धीरे-धीरे प्रतिलोमित करके विलीन कर दिया। युवक अनजाने में स्वगत बोल उठा, "मैं बुंदेला तो नहीं हूं, पर मुझे विदा करते समय क्यों कोई ऐसे शब्दों में लौटने का आग्रह करेगा!"

सहसा किसी आवाज ने पास आकर कहा, "आप बुंदेल नहीं है, तो कहां के रहनेवाले हैं?"

युवक जगनिक ने चौंककर साह्लाद देखा, द्रौपदी पास ही खड़ी थी। युवक ने प्रश्न का कोई उत्तर न देकर उठते हुए कहा, "आप यहां कब से खड़ी थीं?"

युवक ने देखा वह स्थिरता, वह सन्तोषजनित प्रशान्तता इस समय युवती में बिलकुल नहीं थी। घर के वातावरण में उसके नेत्रों पर अपने विचारों को छिपाए रखने के लिए जो परदा पड़ा रहता था, वह अब नदी-तट के वासन्ती वातावरण से दूर हट गया था। उन नेत्रों में ऐसी वितृष्णा थी जैसी उसने पहले कभी नहीं देखी थी। दृष्टि उस नाव की ओर थी—परन्तु नाव से भी बहुत दूर सागर और आकाश को छूनेवाली रेखा को भेदने की व्याकुलता से पूर्ण दिखाई देती थी।

युवक ने अपनी आंखें फेर लीं। हृदय के नग्न अन्तस्तल तक देखने पर उसे उतनी ही लज्जा आई जितनी कि एक नग्न शरीर को देखने पर ऐसे युवक को आ सकती थी। उसे देखने का भी तो कोई अधिकार नहीं था। एक अरक्षणीय क्षण में युवती ने अपना नग्न हृदय केवल नेत्रों द्वारा ही खोल दिया। सहसा युवक के हृदय में यह भय हुआ कि कहीं युवती यह न जान जाए कि उसने उसके हृदय के नग्न रूप को देख लिया

है और फिर महोबे जाने के लिए बाध्य न करे। परन्तु युवती अपने आपे में ही नहीं थी। उसने अपनी दृष्टि उधर ही किए हुए कहा, "यह नाव बहुत दूर से आ रही है और इसके आगे महान नदी और उसके अन्त में समुद्र है, और उस समुद्र के आगे भी न जाने क्या-क्या है। मैंने सुना है कि सुन्दरवन बहुत ही मनोरम स्थान है। सुन्दरवन क्या सचमुच सुन्दर है?"

युवक कुछ हतप्रभ-सा हो गया। तुरन्त एक तोते की तरह बोल उठा, "हां, बहुत सुन्दर है!"

बड़ी उत्कण्ठा के साथ युवती ने युवक की ओर दृष्टि फेरकर कहा, "क्या आपने सुन्दरवन देखा है?"

उसकी उत्कण्ठा से युवक के हृदय में एक अहंकारपूर्ण हर्ष की उत्पत्ति हुई। परन्तु वह अहंकार के व्यक्तित्व को ढकेलते हुए काव्यमयी कल्पना की स्मृतियों का सहारा लेकर एक अपूर्व स्वप्न-वाटिका का दृश्य-वर्णन करने जा रहा था। इतने में युवती ने फिर पूछा, "क्या सचमुच सुन्दरवन यथानाम तथा-गुण है? उसमें क्या सौन्दर्य है?"

बहुत मीठा भी कड़वा हो जाता है—युवती की इतनी तीव्र आकांक्षा देखकर युवक का मन विद्रोही हो उठा। अहंकार ने एक झटका मारकर काव्यमयी कल्पनाओं को पछाड़ दिया। युवक ने शुष्क सांसारिक एवं व्यावहारिक स्वर में कहा, "वन में और होता क्या है—घने पेड़ और जंगली जानवर!"

बिजली के समान . . . 'महाशयजी ने
सब कुछ देखकर भी, . . . [illegible]न में यही
रमणीयता

[illegible] हुआ

"मेरो जोबन बीतो जाय,
बुंदेला बेगी भदयो रे !..."

इसके बाद ही वायु के प्रतिकूल प्रवाह ने गाने के स्वर को धीरे-धीरे प्रतिलोमित करके विलीन कर दिया। युवक मनआने में स्वगत बोल उठा, "मैं बुंदेला तो नहीं हूं, पर मुझे विदा करते समय क्यों कोई ऐसे शब्दों में लौटने का आग्रह करेगा!"

सहसा किसी आवाज़ ने पास आकर कहा, "आप बुंदेला नहीं हैं, तो कहां के रहनेवाले हैं ?"

युवक जगनिक ने चौंककर साह्लाद देखा, द्रौपदी पास ही खड़ी थी। युवक ने प्रश्न का कोई उत्तर न देकर उठते हुए कहा, "आप यहां कब से खड़ी थीं ?"

युवक ने देखा वह स्थिरता, वह सन्तोषजनित प्रशान्तता इस समय युवती में बिलकुल नहीं थी। घर के वातावरण में उसके नेत्रों पर अपने विचारों को छिपाए रखने के लिए जो परदा पड़ा रहता था, वह अब नदी-तट के वासन्ती वातावरण से दूर हट गया था। उन नेत्रों में ऐसी वितृष्णा थी जैसी उसने पहले कभी नहीं देखी थी। दृष्टि उस नाव की ओर थी—परन्तु नाव से भी बहुत दूर सागर और आकाश को छूनेवाली रेखा को भेदने की व्याकुलता से पूर्ण दिखाई देती थी।

युवक ने अपनी आंखें फेर ली। हृदय के नग्न अन्तस्तल तक देखने पर उसे उतनी ही लज्जा आई जितनी कि एक नग्न शरीर को देखने पर ऐसे युवक को आ सकती थी। उसे देखने का भी तो कोई अधिकार नहीं था। एक अरक्षणीय क्षण में युवती ने अपना नग्न हृदय केवल नेत्रों द्वारा ही खोल दिया। सहसा युवक के हृदय में यह भय हुआ कि कहीं युवती यह न जान जाए कि उसने उसके हृदय के नग्न रूप को देख लिया

है और फिर महोबे जाने के लिए बाध्य न करे। परन्तु युवती अपने आपे में ही नहीं थी। उसने अपनी दृष्टि उधर ही किए हुए कहा, "यह नाव बहुत दूर से आ रही है और इसके आगे महान नदी और उसके अन्त में समुद्र है, और उस समुद्र के आगे भी न जाने क्या-क्या है। मैंने सुना है कि सुन्दरवन बहुत ही मनोरम स्थान है। सुन्दरवन क्या सचमुच सुन्दर है ?"

युवक कुछ हतप्रभ-सा हो गया। तुरन्त एक तोते की तरह बोल उठा, "हां, बहुत सुन्दर है !"

बड़ी उत्कण्ठा के साथ युवती ने युवक की ओर दृष्टि फेर-कर कहा, "क्या आपने सुन्दरवन देखा है ?"

उसकी उत्कण्ठा से युवक के हृदय मे एक अहंकारपूर्ण हर्ष की उत्पत्ति हुई। परन्तु वह अहंकार के व्यक्तित्व को ढकेलते हुए काव्यमयी कल्पना की स्मृतियों का सहारा लेकर एक अपूर्व स्वप्न-वाटिका का दृश्य-वर्णन करने जा रहा था। इतने में युवती ने फिर पूछा, "क्या सचमुच सुन्दरवन यथानाम तथा-गुण है ? उसमें क्या सौन्दर्य है ?"

बहुत मीठा भी कड़वा हो जाता है—युवती की इतनी तीव्र आकांक्षा देखकर युवक का मन विद्रोही हो उठा। अहकार ने एक झटका मारकर काव्यमयी कल्पनाओं को पछाड़ दिया। युवक ने शुष्क सांसारिक एव व्यावहारिक स्वर में कहा, "वन में और होता क्या है—घने पेड़ और जंगली जानवर !"

बिजली के समान चमककर युवती ने कहा, "महाशयजी ने सब कुछ देखकर भी कुछ नही देखा है ! क्या सुन्दरवन में यही रमणीयता है ?"

युवती यह कहकर आगे बढ़ गई। युवक पछताता हुआ

उसके पीछे-पीछे हो लिया। दो-एक बार युवक ने कुछ और कहने का प्रयत्न किया, परन्तु वह ऐसी मुद्रा में चल रही थी मानो हवा में कोई विजय-पताका लहराती हुई जा रही हो; अतः उसे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। परन्तु चांदनी रात, चन्द्रप्लावित निर्जन स्थान और रमणी का साथ, इसपर भी चुप रहना असम्भव था। युवक ने पहली फटकार से झेंपकर नम्रतापूर्वक कहा, "'ढाई दिन के झोंपड़े' ने हम और आप दोनों से अधिक देखा है।"

युवती ने बिना उसकी ओर देखे ही उत्तर दिया, "इस झोंपड़े ने तो सारे संसार को आते और जाते देखा है। महाराज अनंगपाल एक बार पृथ्वीराज को शैशवावस्था में लेकर इसी कमरे में रह चुके हैं, जिसमें महाशयजी ठहरे हैं। कन्नौज की लड़ाई में हारकर महोबा जाते समय जयचन्द भी यहां एक रात ठहर चुके हैं।" और युवक के हृदय को चोट पहुंचाने के लिए उसने फिर कहा, "और छत की छोटी कोठरी में बैठकर महाकवि चन्दबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य का आरम्भ भी यहीं किया था।" फिर वह युवक की ओर देखकर हल्के तिरस्कार के स्वर में बोली, "वही तुच्छ कोठरी जिसमें अब मैं रह रही हूं।"

युवक का ध्यान इन बातों की ओर नहीं था। वह उन महान नामों की प्रतिध्वनियां सुन रहा था। उसके मानसिक क्षेत्र से वर्तमान 'ढाई दिन का झोंपड़ा' उठकर अतीतकाल में पहुंच गया था। संसारचक्र के नवरस समावेश करनेवाले ऐतिहासिक व्यक्तियों के रथचक्र 'ढाई दिन के झोंपड़े' की ओर दौ[illegible] थे। दुर्धर्ष योद्धा और कुबेर-तुल्य धनी-मानी [illegible] झोंपड़े के टिमटिमाते प्रदीप को दूर से लक्ष्य

करके रात्रि के समय शान्ति और विश्राम की आशा से दौड़ते रहे होंगे। सहसा युवक बोल उठा, "'ढाई दिन का झोंपड़ा' एक जाग्रत् देवता के मन्दिर के सदृश छोटे-बड़े, राजा-रंक सभीके लिए आश्रयस्थल है—जहां भूखे-प्यासे और क्लान्त आकर शान्ति पाते हैं। यह एक जीवित स्वप्न है। इसीलिए मैं इसमें बैठकर अपनी कल्पना साकार करना चाहता हूं।"

किसी अन्य समय तो युवक ऐसी जली-कटी भाषा में इसका उत्तर देता कि युवती सन्न रह जाती; परन्तु इस समय युवक के जीवन में एक क्षण में ही नवीन क्रान्ति का उदय हो गया था। अब तक मानो वह एक घूमनेवाले यन्त्र पर बैठकर संसारचक्र को देख रहा था। अब वह यन्त्र रुक गया। धीरे-धीरे दृश्य-जगत् अपने-अपने स्थान पर उचित रूप से स्थिर हो रहा था। वह उठकर धीरे-धीरे 'ढाई दिन के झोंपड़े' की ओर चल पड़ा। उसका विचार अभी तक पूर्ण स्थिर नहीं हो पाया था। ऊपर आकाश था, नीचे पृथ्वी और सामने 'ढाई दिन का झोंपड़ा'। झोंपड़े के भीतर का क्षीण आलोक ऐसा दीख रहा था जैसे उसकी ज्योति आनन्दाश्रु से कुछ मलिन हो गई हो। मानो वह भीमकाय रसोइया कोई स्वप्नराज्य का मन्त्रसिद्ध पुरोहित होकर युवक की खोई हुई आत्मा की 'ढाई दिन के झोंपड़े' में प्राण-प्रतिष्ठा कर चुका हो, और जैसे उसने अपने-आपको ढूंढते हुए उसके भटकते शरीर को आकर्षण-मन्त्र से खींचकर वहां बुला लिया हो।

गजधर ने उठकर हर्षपूर्वक युवक का अभिवादन किया। युवक ने हर्षोद्वेलित हृदय से प्रत्यभिवादन किया। इस आश्चर्यजनक महान एवं दैवी चमत्कार की विभूति पर, जबकि अपना खोया हुआ आपा युवक को मिल चुका था,

इस समय युवती का कर्कश वाग्बाण भी कुछ असर न डाल सकता।

पांच

सोमवार को जगनिक 'ढाई दिन के झोंपड़े' में आया था। आज शनिवार था। घोड़े के पैर का घाव लगभग आधा पुर चुका था। युवती ने अब बातचीत में उसे महोबे जाने का इशारा करना बन्द कर दिया था। एक बार स्वयं युवक ने कृत्रिम शिष्टाचार प्रदर्शित करते हुए कहा था, "घोड़े के पैर का घाव पुरने में देर हो रही है—आपको कष्ट हो रहा होगा।" परन्तु उत्तर में युवती केवल सिर हिला एक अनिर्दिष्ट संकेत करके वहां से हट गई थी। वह कहती तो कुछ न थी; परन्तु उसके रुख से एक ऐसी लापरवाही-सी टपकती थी मानो जगनिक का वहां अस्तित्व ही नहीं हो।

नित्य प्रातः युवक उस वट-वृक्ष की छाया में बैठकर कुछ लिखने का प्रयत्न करता था। आल्हा और ऊदल की आरम्भिक क्रियाशीलताओं से लेकर बिठूर के मेले और चन्दनबगिया की लड़ाई तक का वृत्तान्त वह पद्यबद्ध कर चुका था। किन्तु अब वह केवल युद्ध-वर्णन न लिखकर उसमें स्त्री पर विजय-प्राप्ति, प्रेम, विवाह, पारिवारिक सम्बन्ध आदि के विषय में सोचता और लिखता था। वीररस की रौद्रता अब उसकी लेखनी से नहीं निकल रही थी, इसलिए अब वह अपने काव्य में नायक-नायिका का समावेश कर शृंगारयुक्त वीररस की सृष्टि करना चाहता था। किन्तु प्रतिदिन उसकी लेखनी रुक जाती थी और उसे हताश हो सरोद उठाना पड़ता था। इस

जीभकटी और सिरकटी निर्जीव लेखनी का एक अलग व्यक्तित्व-सा हो गया था। अड़ियल टट्टू के समान वह अब दूसरे के जबर्दस्ती हांकने पर नहीं चलती थी। निराश हो, लेखनी बन्द कर युवक घण्टों सरोद बजाया करता था, पर किसी गाने के साथ नहीं। शब्दहीन रस-झंकार सरोद के तारों से निकला करती थी। कभी आशा, कभी निराशा, कभी करुणा, कभी उत्साह, कभी विषाद, कभी हर्ष—परन्तु एक अज्ञात वेदना की प्रबल लहर-सी उठकर आकाश के गर्भ में विलीन हो जाती थी। फिर वह वेदना सबपर छा जाती। अब तक संहारकारी दुर्धर्ष शक्ति का परिचय ही उसके काव्य में लिखा गया था। पीड़ितों की व्यथा, मनुष्यों की दुर्बलता और असफलता की पीड़ा का कोई वर्णन उसके काव्य में समाविष्ट नहीं हुआ था। सृष्टिकाल में प्रकृति के गर्भ में जो पीड़ा होती है, उस उत्कट वेदना के साथ कुछ आशापूर्ण कटु आनन्द भी होता है। लेखक को भी किसी नवीन रचना की सृष्टि करते समय एक गर्भ-वेदना होती है, और जब तक प्रसव-रूपी कृति पूरी न हो जाए, वह तड़पता रहता है। यही लेखक का रहस्य भी है और कसौटी भी। पर हमारा यह लेखक उनमें से नहीं था जो रचनात्मक गर्भ-पीड़ा को शीघ्र दूर करने के लिए प्रकाशक-रूपी आधुनिक वैद्य को बुलाकर गर्भस्राव करवा सकता। वह पूरे नौ मास, नौ दिन की गर्भयातना को सहकर पूर्णावयव परिपक्व शिशु को जन्म देना चाहता था। वह स्वान्तः सुखाय लिखने का आनन्दानुभव करना चाहता था। कुशल लेखक स्वकृति की जैसी कड़ी समालोचना कर सकता है, वैसी अन्य समालोचक नहीं कर सकता।

विचारों का आह्वान देर तक करते रहने पर भी सूझ

आगे न बढ़ी। आज भी युवक ने लेखनी रख दी और सरोद के तार छेड़ने लगा, परन्तु वे तार भी आज विद्रोही-से हो गए थे। उसने सरोद को भी एक किनारे रख दिया। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई और सब सामान उठाकर अपने कमरे में चला गया। फिर रसोईघर में एक चक्कर लगा आया, परन्तु युवती की झलक एक बार भी दिखाई न दी। थोड़ी देर बाद वह फिर अपने कमरे में गया और सरोद उठाकर सीधे नदी की ओर चला गया। किन्तु वहां भी सरोद की तरंगें निष्प्राण थीं। किसी समय इसी सरोद को लेकर युवक जगनिक गंगा नदी के तट पर अद्भुत सफलता के साथ अपने विचारों को प्रेरणा दे सकता था और उस नदी के उतार-चढ़ाव को विमुग्ध नेत्रों से देखा करता था। उसने सोच रखा था कि वह किसी समय नदी और समुद्र के सम्मिलन, आदान-प्रदान और विवाह पर महाकाव्य लिखेगा। यह उस समय की बात है जब युवक अपने-आपको खो नहीं चुका था किन्तु इस छोटे गांव के सन्निकट बहनेवाली छोटी नदी की तरंगों में ऊर्मि न थी, उतना उतार-चढ़ाव नहीं था, और न था समुद्र से सम्मिलन और आदान-प्रदान। यह नदी भी 'ढाई दिन के झोंपड़े' का नमूना थी—झोंपड़े का क्यों, उसकी मालकिन का। झोंपड़ा तो अपनी विशाल गोद में सहस्रों को आश्रय दे चुका था। युवक ने अपने मन को गंगा नदी के किनारे डाल दिया। उसकी काल्पनिक नदी में उस समय ज्वार का वेग था। उसकी कल्पना में जो चित्र उद्भासित हुआ उसपर उसने यह गान बनाया :

तुम हो सागर के तट पर,
मैं हूं गंगा के तीर।

निज अंगों में स्पर्श करे—
तेरा सुरभित नीर।'''

किन्तु उसकी वर्तमान सभी रचनाओं की तरह यह भी अधूरी ही रह गई। चित्त विक्षिप्त-सा हो उठा। सागर की सद्यःस्नाता युवती के स्थान पर 'ढाई दिन के झोंपड़े' की द्रौपदी और मृदुल हिलोर की जगह उसकी यह श्लेषपूर्ण और विरक्तियुक्त वाणी की 'आपने सब कुछ देखते हुए भी कुछ नहीं देखा' आ गई। इससे उसका सुकोमल मानसिक चित्र नष्ट हो गया। उसका कल्पना-राज ध्वस्त हो गया। उसे विद्वानों का यह कथन याद आया कि मानसिक विपर्यय के समय शरीर को थका देना ही सबसे उत्तम औषधि है। वह सरोद लेकर नदी के किनारे-किनारे चल पड़ा। उसने मन में ठान ली कि आज दिन-भर बिना भोजन किए चलता ही रहूंगा।

छः

सन्ध्या का समय था। युवक भोजन करके छज्जे पर बैठा था। दिन-भर चलने के श्रम के कारण वह थक गया था, परन्तु उसके मन में एक नई स्फूर्ति आ गई थी। रसोइया अपना काम-काज समाप्त कर नितम्बों पर हाथ पोंछता हुआ सामने आ खड़ा हुआ। क्षण-भर बाद वह बोला, "महाशयजी, आज आंधी आएगी। मेरे पुराने घावों में दर्द उठ रहा है!"

युवक ने आकाश की ओर देखा। चन्द्रमा उन्मुक्त आकाश मे मोटे मूर्ख की भांति अर्थहीन [illegible]। चन्द्रमा ने अपने चारों ओर रंग-बिरंगे [illegible]

को समरांगण-सा बना दिया था। उड़ते हुए बादल न
प्रकार की व्यूह-रचना में व्यस्त मालूम होते थे। ग्राम
कई स्त्रियां इस समय युवती के पास बैठी बातें कर रही थं
युवती का अस्पष्ट स्वर कभी-कभी इन दोनों को सुनाई
जाता था।

अकस्मात् रसोइया बोल उठा, "श्रीमतीजी एक अद्भु
रमणी हैं।"

युवक ने कुछ चिढ़कर बात बदलने के लिए कहा, "तुम्ह
जीवन में वह कौन-सा रहस्यमय इतिहास है जिसके का
तुम योद्धा से रसोइया बन गए ? और इन घावों का भी
इतिहास होगा!"

रसोइये ने अपना आकर्ण-विस्तृत मुंह फाड़कर दांत निक
लते हुए कहा, "क्यों नहीं ! ऐसा इतिहास है जो कवि
की कल्पनाओं से भी विचित्र है। मनोरंजक भी कम नहं
है। सुनिएगा ?"

युवक ने सुस्थिर होकर कहा, "हां हां, कहो।"

रसोइये ने अपना पंवारा शुरू किया। हजार बार क
हुई कहानी की भांति यत्र-तत्र नवीन उक्तियां जोड़क
वह कहने लगा। परन्तु युवक को वह हजार बार सुनी ह
कहानी की भांति आकर्षण-रहित शुष्क और नीरस वृत्तां
ही मालूम हुआ। जो कहानी बहुत बार कही जाती है उस
ममता की छाप नहीं रहती—वह सबकी हो जाती है औ
उसमें विशेषता नहीं रह जाती। वह नवविवाहिता के समा
न रहकर बाजारू वेश्या के सदृश उपेक्षणीय बन जाती है।

चन्द्रमा के अस्पष्ट आलोक में कई युवतियां भी इन दो
पुरुषों की ओर आती दिखाई पड़ीं जो थोड़ी दूर पर।

रुक गई। उनमें से एक आगे बढ़ गई। युवक को ऐसा भान हुआ जैसे उस युवती ने ठंडी सांस ली हो। युवती कुछ इतस्ततः करके लौट जाने को मुड़ी। युवक से न रहा गया। उसने मन में सोचा, 'रसोइये ने तो सैकड़ों बार यह कहानी सुनाई होगी, फिर भी उसे सुनकर वह युवती दीर्घ श्वास ले रही है।' युवक ने रूखे स्वर से रसोइये को रोका और बिना विशेष भूमिका के ही अपनी कहानी शुरू कर दी। उसके सुनाने का ढंग भी वैसा ही रोचक और आकर्षक था जैसा लिखने का। धीरे-धीरे कहारिन भी इस कथा को निकट से सुनने के लोभ से वहां आ पहुंची। वह युवती जहां थी वहीं बैठ गई। उद्ग्रीव कौतूहलमय वातावरण बन गया। सबके सब मुग्ध और दत्तचित्त हो सुनने लगे। वक्ता महोदय अपनी वाणी पर स्वयं मोहित हो उल्लास से भर गए और सुमार्जित कौशल और न्यास-विन्याससहित विचित्र रसों का समावेश करते हुए कथा सुना चले। वाल्मीकि ने लव-कुश से राम के दरबार में रामायण गवाई थी, आज यह युवक अपने ही दरबार में अपनी ही रामकहानी सुना रहा था। युवक कहानी कहता जाता था, परन्तु उसके मन का एक अंश श्रोताओं पर पड़नेवाले प्रभाव को भी लक्ष्य करता जा रहा था। उस साक्षीमन के टुकड़े में यह विचार आया कि इस युवती ने मुझे एक हृदयहीन पर्यटक-मात्र समझा था···'सब कुछ देखकर भी आपने कुछ नहीं देखा,' कहा था··· ले, अब सुन ले कि मैंने क्या-क्या देखा है। जगत् के प्राणी-मात्र [illegible] के अन्तस्तल को देखा है और उसे अब तुझे [illegible]ता हूं। एक छोटे-से ग्राम की हद में रहनेवाली, और शान्ति के आलस्य को परितृप्ति समझ

उसपर गर्व करनेवाली युवती, तुझे भी इसी प्रकार प्रि
करके छोड़ूंगा, जैसा मैं हूं।...'

युवती की अस्पष्ट छाया कहानी के रस-सम्पुट के
उद्ग्रीवतापूर्वक निकट सरकती आ रही थी। युवक के
में पहले भय-सा था कि कहीं वह कथा के बीच में ही न
जाए। उसको निकट सरकते देखकर युवक के साक्षीभूत
ने एक उल्लास की हुंकार छोड़ी...अब कहां जाएगी—
मारा ! जगनिक ने इस समय अपने-आपको सुधाभाण्ड
अमृत बांटनेवाली मोहिनी के सदृश समझ लिया। दुश्शा
ने द्रौपदी के वस्त्र-हरण का प्रयत्न किया था, परन्तु
द्रौपदी 'ढाई दिन के झोंपड़े' की द्रौपदी के सदृश होती
दुश्शासन के कान पकड़कर दो तमाचे रसीद करती औ
महाभारत होने की नौबत ही न आती। आज वर्तमा
इस द्रौपदी के सारे मानस-आवरणों को प्याज के छिलके की
तरह एक-एक करके निकाल फेंकने का यत्न कर रहा है
एक बार नदी के किनारे इस द्रौपदी की नग्न आत्मा की
झलक उसकी आंखों में दिखाई पड़ी थी, आज उसके स
आच्छादनों को दूर करके उसके आत्मगर्व के नीरव
को उन्मुक्त कर युवक ने बाहर निकाल दिया।

एक नारदीय मुस्कराहट के साथ उसने अपनी कहानी
नवीन सम्पुट देना शुरू किया। कहानी समाप्त होने प
श्रोताओं के हृदय से एक अतृप्तिसूचक दीर्घ उच्छ्वास निक
पड़ा। रसोइये ने ईर्ष्यायुक्त स्वर में कहा, "महाशयजी
कहानी कुछ भी हो, पर आपके कहने का ढंग अपूर्व है।"

गजधर के इस प्रशंसात्मक वाक्य का कद्रदानी के भूखे
पर काफी प्रभाव पड़ा। केवल उच्छ्वास द्वारा

आगे न बढ़ी। आज भी युवक ने लेखनी रख दी और सरोद के तार छेड़ने लगा, परन्तु वे तार भी आज विद्रोही-से हो गए थे। उसने सरोद को भी एक किनारे रख दिया। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई और सब सामान उठाकर अपने कमरे में चला गया। फिर रसोईघर में एक चक्कर लगा आया, परन्तु युवती की झलक एक बार भी दिखाई न दी। थोड़ी देर बाद वह फिर अपने कमरे में गया और सरोद उठाकर सीधे नदी की ओर चला गया। किन्तु वहां भी सरोद की तरंगें निष्प्राण थीं। किसी समय इसी सरोद को लेकर युवक जगनिक गंगा नदी के तट पर अद्भुत सफलता के साथ अपने विचारों को प्रेरणा दे सकता था और उस नदी के उतार-चढ़ाव को विमुग्ध नेत्रों से देखा करता था। उसने सोच रखा था कि वह किसी समय नदी और समुद्र के सम्मिलन, आदान-प्रदान और विवाह पर महाकाव्य लिखेगा। यह उस की बात है जब युवक अपने-आपको खो नहीं चुका

किन्तु इस छोटे गांव के सन्निकट बहने
तरंगों में ऊर्मि न थी, उतना उतार-चढ़ा
था समुद्र से सम्मिलन और आदान-प्रद
'ढाई दिन के झोंपड़े' का नमूना थी
मालकिन का। झोंपड़ा तो अपनी
आश्रय दे चुका था। युवक ने
किनारे डाल दिया। उसको
ज्वार का वेग था। उसकी

उसके कहने के ढंग की कद्र उसके लिए पर्याप्त न थी। वह कुछ स्पष्टतायुक्त वाणी में सुनना चाहता था, इसलिए जब उसने रसोइये के मुख से उपयुक्त और प्रत्याशित प्रशंसा सुनी तो गर्व के साथ बोल उठा, "मैं कवि भी हूं और गायक भी। जो कहानी मैंने अभी-अभी कही है, यह मौलिक और अद्वितीय है। इसे महाकाव्य के रूप में इसी स्थान पर पद्यबद्ध करूंगा— इसी 'ढाई दिन के झोंपड़े' की कोठरी में जिस जगह बैठकर चन्दवरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' लिखा और अमर महाकवि बन गया; उसी जगह मेरा यह दूसरा समकालीन महाकाव्य तैयार होगा, जो समय आने पर हिन्दू-मात्र की जिह्वा पर नृत्य करेगा। उसमें वीररस तो प्रधान रूप में होगा ही, शृंगार, हास्य,करुणा और शान्ति का भी पर्याप्त पुट होगा।" यह कहकर युवक को मानो अपना खोया हुआ स्वत्व मिल चुका था।

युवती ने गम्भीर स्वर से कहा, "यह तो ठीक है, पर खेद है कि महाशयजी की यह कृति पूरी नहीं हो पाएगी।"

युवक उछल पड़ा। वह स्वान्त-सुखाय के पूर्णोल्लास में युवती को भूल गया था। वह बोल उठा, "अधूरी रहने के कारणों पर मैं विजय प्राप्त करके रहूंगा! संसार में कोई भी बात असम्भव नहीं है। यदि तन, मन, धन से कोई मेरी तरह कुछ चाहता है तो वह उसे पूरा करके रहता है।"

युवती ने इसपर प्रश्न किया,"क्या आपके सांसारिक अनुभव यही हैं कि जो कुछ आप पूर्ण हृदय से चाहें वही मिल जाए?"

युवक ने हंसकर कहा, "श्रीमतीजी, और चाहे जो हो, पर इतना तो निश्चय है कि मुझे यहां से कोई निकाल नहीं सकता, क्योंकि अब मैं जान गया हूं कि मैं क्या चाहता हूं। जो कुछ मैं चाहता हूं वह इस 'ढाई दिन के झोंपड़े' में मौजूद है, और

"'ढाई दिन के झोंपड़े' का।"

"नहीं, कदापि नहीं। भला यह कैसे हो सकता है!"

"हो सकता है, और होकर ही रहेगा।"

युवक का सिर चक्कर खा गया। यह युवती क्या पागल है। उसने अस्पष्ट रूप से रसोइये की ओर देखा। गजधर खड़ा होकर अपने दोनों हाथों से अपना कलेजा सभाल रहा था। 'ढाई दिन का झोंपड़ा' भी चक्कर खाने लगा। मानो उसकी नीव-भूमि से निकलकर आपत्ति करने के लिए बाहर आ गई हो। युवक ने अपने-आपको संभाल लिया। रणभूमि की कल्पना करके उसने इस किले की रक्षा का भार अपने जिम्मे ले लिया। इस अवांछित महापाप के विरुद्ध वह 'ढाई दिन के झोंपड़े' का रक्षक बन बैठा।

"आप ऐसा नहीं कर सकतीं। न ऐसा करने का आपको अधिकार ही है। वंश-परम्परा से यह स्थान आपके पूर्वजों के हाथों में चला आ रहा है। यह उनके प्रति विद्रोह और विश्वासघात होगा। इस स्थान का महत्त्व आप नहीं समझतीं। क्या करने जा रही हैं, यह आप नही जानती। आपका मस्तिष्क ठिकाने नहीं मालूम होता। आपको एक अभिभावक की आवश्यकता है।"

"सार्वजनिक नीलाम में बोली देकर 'ढाई दिन का झोंपड़ा' बेचा जाएगा। और यह आप ही की बदौलत होगा!"

क्रोध और विस्मय से युवक चिल्ला उठा, "क्या! मेरी बदौलत?"

"हां, आप ही की बदौलत! आपने मेरी आंखें खोल दीं। मैं अब समझने लग गई कि यह स्थान मेरे लिए क्या है। एक कारागार है, एक कब्र है। मैं अब अपना जीवन इस कैद

में नहीं काट सकती । अब मैं इसमें क्षण-भर नहीं र
चाहती । मुझे इससे घृणा हो गई है । मुझे इस धीमे
एक-एक कण से घृणा हो गई है—यहां के अन्न-जल से घृ
हो गई है । मोटे-ताजे और धनी पथिकों से नफरत हो र
है । महोबे से कालिंजर और कालिंजर से महोबे नित्य आ
जानेवाले धूलिधूसरित, पसीने से तर अश्लील पेटू यात्रि
से घोर घृणा हो गई है !"

युवक की समझ में अब आया कि उस प्रशान्त स्थैर्य
बाह्यावरण में कितनी अशान्ति और अस्थिरता भरी हुई थी।
सुप्त ज्वालामुखी हुंकारपूर्वक भड़क उठा।

सहसा युवती हंस पड़ी। पर उस हंसी में पागलपन क
ठहाका था। उसकी आंखें सजल हो गईं। बड़े ही स्थिर
से वह बोली, "आपने सोचा था कि मैंने उस रात्रि आप
ठहरने के लिए स्थान इसलिए दिया था कि आप युवक, धीर
कवि तथा शक्तिशाली हैं; और साथ ही आप शिशुओं
तरह मचलना, हठ करना और छल-छिद्र जानते हैं। मनचा
वस्तु पर जबर्दस्ती अधिकार जमा लेने की आपमें आद
है। मैंने तो आपको इसलिए आश्रय दिया था कि आप
साथ इस घूमती हुई पृथ्वी के दिग्दर्शन का एक वातावर
था। आपके धूलिधूसरित पथ-श्रान्त शरीर से एक-एक धूलि
कण पुकार-पुकार भारत के विशाल नगरों की धूमधाम क
सन्देश दे रहा था। जो कुछ मैंने संसार के बारे में पढ़ा है
और स्वप्न-राज्य में उसे देखने को सदा से उत्सुक रही हूं—
विस्तृत मरुभूमि, विशाल महासागर, सघन वन, गगनचुम्बी
[illegible], मनोरम तीर्थस्थान—जहां अब भी सुदूर अतीत
[illegible] नभोमण्डल में मंडरा रही है। राजाओं-शासकों

के दरबार, सौन्दर्य और विलासिता के हिल्लोल के दूत की भांति आप इस झोंपड़े के द्वार पर पधारे थे। अब चाहे कुछ हो, मैं अब भारत के इन सौन्दर्यों और आकर्षणों को अपनी आंखों देखकर रहूंगी।"

वाक्-प्रवाह के साथ-साथ युवक और युवती दोनों ऐसे अकड़ने लगे थे जैसे दो प्रतिद्वन्द्वी योद्धा द्वन्द्वयुद्ध की तैयारी कर रहे हों—मानो किसी अप्रतिरोधनीय शक्ति के साथ किसी अचल, अटल जड़ वस्तु की प्रतिस्पर्द्धा हो रही हो। अभी-अभी कहानी कहते समय युवक को जिस आत्मविजय का अनुभव हुआ था, उस विजयोल्लास को युवती छीने ले रही थी। जगनिक के पांव तले से ज़मीन खिसकती-सी मालूम होने लगी। वह सोचने लगा, 'यह रक्त-पिपासु चुड़ैल डायन के रूप में प्रकट हो रही है। एक महान काव्य का जन्म होने के पूर्व ही वह उसका गला घोंटे दे रही है।' युवक ने एक अन्तिम चेष्टा करके कहा, "श्रीमतीजी, मैं विश्वास दिलाता हूं—सारा भारत मैंने इन्हीं आंखों से देखा है। आपका कल्पना-राज्य वास्तविक जगत् से कहीं अधिक सुन्दर है। आप वास्तविक संसार देखकर सुखी नहीं होंगी।"

युवती ने प्रस्तुत उत्तर दिया, "मैं अपना कल्पना-राज्य आपको सहर्ष उपहारस्वरूप देती हूं। मैं समुद्र देखूंगी और जहां पर सागर और आकाश जुड़े हुए हैं, उस स्थान को अपने हाथों स्पर्श करूंगी। सम्भव है इन्द्रधनुष के किसी छोर तक पहुंच जाऊं। मैं बाल्यावस्था में सुना करती थी कि इन्द्रधनुष के छोर में ऐसे चमकते हुए रंग-बिरंगे मणि-माणिक्यादि हैं जिनमें कल्पनातीत आभा और सौन्दर्य है। इन्हीं रत्नों की द्युति से इन्द्रधनुष रंजित होता है। मैं उसकी ओर चलती

हो जाऊंगी, कभी न रहूंगी, कभी वापस न लौटूंगी !"

मारे क्रोध के युवक अपने-आपे में न रहा। इस समय उसे ये भावुकतापूर्ण कल्पना-साम्राज्य की बातें युद्ध की चुनौती के समान लग रही थीं। "मूर्ख, द्रौपदी का पेट एक महाभारत छिपाकर द्वापर में नहीं भरा था—अब कलियुग में जन्म लेकर एक भव्य कृति की भ्रूण-हत्या करने को तैयार है। चाण्डालिन, विद्याहीन, हृदयहीन, कर्कश !…"

युवती ने बीच ही में कुककर कहा, "तो अब स्पष्ट शब्दों में सुनिए महाशयजी ! वह बात सुनिए जिसे कहने के लिए मैं आपके पधारने के बाद से ही अब तक इतस्तत: कर रही थी। आप अहंकारी, उच्छृङ्खल, हठी, सिद्धान्तहीन, गंवार और छिछोर हैं, और अब आप बिलकुल असह्य हो गए हैं !"

धड़ाम से दरवाजा बन्द हो गया। हवा के एक प्रबल झोंके ने बत्तियां बुझा दीं। आकाश में चन्द्रमा काले बादलों के भीतर छिप गया। प्रत्येक वस्तु धुंधली दिखाई देने लगी। युवक हतप्रभ-सा होकर इधर-उधर देखने लगा। अप्रत्याशित तिरस्कार के कारण हंसता-खेलता बच्चा जिस प्रकार सन्न रह जाता है उसी तरह जगनिक भी स्तम्भित-सा हो गया। सामने भीमकाय रसोइया ब्रह्मराक्षस-सा अस्पष्ट दिखलाई देता था। उसने कहा, "मैंने आपसे कहा था न ? मेरे पुराने घाव बता रहे थे कि आज आंधी आएगी।"

सात

नीलाम का दिन था। सवेरा होते ही भांति-भांति के 'ढाई दिन के झोंपड़े' पर एकत्र हो रहे थे। भोजन-

स्थान और रसोईघर तक में भीड़ हो रही थी। रसनाप्लुत करनेवाली जो सुगन्ध प्रतिदिन रसोईघर से निकला करती थी उसके स्थान में आज मिर्चों का बघार, जलते खाद्य पदार्थों की दुर्गन्ध और कण्डों का धुआं छा रहा था। मालूम होता था कि आज रसोइया सबको ज़हर देने के विचार में है। उसके रंग-ढंग से आज सूपकार के स्थान में योद्धापन का भाव अधिक टपक रहा था। वह सबको रूखे शब्दों में उत्तर देता और आते-जाते व्यक्तियों को ढकेलकर बड़बड़ाता हुआ चलता था। नीलाम करनेवाले सेठ महाशय कन्नौज में आए थे। उन्होंने चुनकर भोजन-स्थान को ही अपना प्रधान केन्द्र बना रखा था। उनकी निष्प्रभ आंखों से जीवात्मा की झलक के स्थान में एक मनुष्यत्व-विहीन निष्प्राणता टपक रही थी। आखें पीली थीं। उनमें वह पीलापन था जो केवल सोने का प्रतिबिम्ब संगमरमर पर पड़ने पर ही दिखाई दे सकता है। वे एक अधेड़ उम्र के मारवाड़ी वणिक थे। स्वर्ण की तपस्या करते-करते उनका हृदय पत्थर के समान हो गया था। उनकी आखें गोल और धंसी हुई थीं। इस तोताचश्म वणिक के साथ एक मुनीम भी था। वह अपने मालिक के सामने भीगी बिल्ली बना रहता था, पर ज्योंही मालिक आंखों से ओझल होता, वह इस प्रकार अकड़कर चलता जैसे सारा संसार उसीके वश में हो।

रसोइये ने धीमे स्वर में युवक जगनिक से कहा, "यह बनिया नीलाम करने के लिए राज्य की ओर से आया है।"

इसी समय कुछ कोलाहल बढ़ा। वस्त्राभूषण से लदे हुए एक व्यक्ति ने प्रवेश किया और आस-पास के लोग सम्भ्रम के साथ उसके लिए रास्ता छोड़ने लगे। उसकी पगड़ी पर

मोती के हार गुंथे हुए थे। मस्तक पर ऐसा बड़ा तिलक था
कि दर्शक की दृष्टि बरबस उसपर अटक जाती थी और शेष
अवयव उस तिलक के सामने अस्पष्ट हो जाते थे। धर्म के
मान के साथ पाप के समूहों का एक अनुपात होता है। इस
अनुपात के साथ मितीकाटे का समीकरण करके उन्होंने उस
तिलक के क्षेत्र को विस्तृत कर लिया था, और चक्रवृद्धि ब्याज
की तरह उसका आयतन अवस्था के साथ बढ़ता ही जाता
था। उनके दोनों नेत्र सहकारिता के लिए एक-दूसरे की ओर
झुके थे। जिस नासाग्र-दृष्टि के लिए गोरखनाथ आदि
स्वियों को युगों तपस्या करनी पड़ी थी वह इन महाशय
अनायास जन्म से ही प्राप्त हो गई थी। स्वकीय के ि
इन्हें 'पर' का ज्ञान बिलकुल नहीं था। उनका ऊपर का
पतला और नीचे का मोटा और लटकता हुआ था। नासि
और ऊपरी ओष्ठ के बीच का स्थान बहुत संकीर्ण था।
के समान मूछ के बाल मसूड़ों से टकराते थे। सेठजी में
विशेष मुद्रा-दोष यह था कि वह अपनी नासिका को
और ओष्ठ को ऊपर करके सुड़का करते थे। ठुड्डी बहुत छ
थी जिसको छिपाने के लिए उन्होंने सिक्खों के बादशाह के स
दाढ़ी रखी थी। शरीर पर आभूषण इतने थे कि स्त्रियों
भी ईर्ष्या होती। कमर के ऊपर का भाग लम्बा और
का छोटा होने के कारण शीघ्रतापूर्वक चला नहीं जाता
साथ ही, तोंद का बोझ गुरुत्वाकर्षण के केन्द्र को
रेखा में रखने के लिए सदा व्यस्त रहता था। जैसे
को चंचल से अचल बना रखने के लिए उन्होंने अपनी
ी कर ली थी। उनके पीछे-पीछे स्वर्ण-मुद्राओं से भरी
ी लिए भारवाहक आ रहा था।

उपस्थित लोगों ने अभिवादन करके उन्हें बैठने के लिए स्थान कर दिया। परन्तु युवक जगनिक ने इस कौबेरिक स्वर्ण-पर्वत को घृणा, उपेक्षा और अवज्ञा की दृष्टि से देखकर अपनी आंखें फेर लीं। उसकी आंखें उस भीड़ में जिसे ढूंढ़ रही थी वह एक खिड़की के पास निर्विकार और निश्चल रूप से खड़ी थी। युवक को उस समय ऐसा मालूम हुआ मानो वह एक ऐसी निरी बच्ची-सी बन गई है जिसे यह भी ज्ञान नहीं है कि काल-क्रीड़ा के ऐतिहासिक साक्षी-स्वरूप क्षणभगुर जगत् में एक स्थायीपन का दृष्टान्त वह 'ढाई दिन का झोंपड़ा' आज उसके हाथ से सदा के लिए निकल जाएगा। वह अपनी वंश-परम्परा के जन्मसिद्ध अधिकार-स्थल को आज स्वर्णमाक्षिक वणिक के हाथ अम्लान-वदन हो बेचने के लिए प्रस्तुत है। और वह यह सब बेच किसलिए रही है—इसीलिए न कि जिससे वह केवल भारत के प्रदेश, नगर और वस्तुएं देख सके। यह दृष्टि-लालसा तो कामुकों की इन्द्रिय-लालसा से भी अधिक अक्षम्य है।...

"दो हजार एक मुद्रा!"

सहसा युवक की विचार-तरंगिणी रुक गई। उसने देखा, नीलामवाला कुछ कह चुका था और नीलाम आरम्भ हो चुका था। रसोइये ने आजीवन का बचाया हुआ कष्टोपार्जित सर्वस्व चढ़ाकर बोली बोल दी थी। लोग हंस रहे थे। नीलाम-वाले ने गम्भीर स्वर से डांटकर कहा, "अधिक समय नष्ट करने की जरूरत नहीं। कोई उचित बोली बोली जाय।"

युवक ने घूरकर युवती की ओर देखा। क्या यह पाषाणी कुछ भी विचलित नहीं हो सकती? क्या इसे लज्जा नहीं आती? इस गरीब रसोइये ने अपना सर्वस्व देकर इस झोंपड़े

की रक्षा करने का जो सराहनीय प्रयत्न किया है क्या इसका कोई भी प्रभाव इस निष्ठुर युवती के हृदय पर नहीं पड़ा।

जगनिक ने रसोइये की ओर देखा तो वह पसीने से ओत-प्रोत हो रहा था। एक विह्वल और हताश छोटे बालक की भांति अश्रुसिक्त आंखों से उसने युवक की ओर देखा और जोर से अपने हाथ कपाल पर दे मारे।

छोटी-छोटी बोलियां बन्द हो चुकी थीं। कुबेर का सौतेल पुत्र नासिका, होठ और मूंछों का घर्षण करते हुए बोला "पांच हज़ार एक।"

युवक ने चिल्लाकर कहा, "सात हज़ार।"

मारवाड़ी ने थैली पीटते हुए इस प्रकार का भाव प्रक किया मानो वह मुद्राओं की झंकार से ही बोली बोलनेवाले को स्तम्भित कर देगा। फिर कांपते गले से चिल्लाकर बोला, "सात हज़ार इक्यावन !"

युवक ने अपने धन की सीमा पर मानसिक दृष्टि फेरते हुए कहा, "दस हज़ार।"

युवती की आंखें युवक की ओर स्तब्ध-दृष्टि से देखने लगी। युवक उसकी दृष्टि का कोई अर्थ नहीं समझ सका।

मारवाड़ी सेठ इस प्रकार बोला जैसे उसकी आंतड़ियें टूट रही हों, "दस हज़ार एक सौ एक।"

सेठ हांपने लगा। एक ओर उस स्थान का स्वामी बनने का अभिमान; दूसरी ओर वहां की बधी हुई दैनिक आमदनी, और विशाल होकर भी जीर्ण ढांचा। तीसरी ओर इतनी भारी भीड़ में शान जमाने की लिप्सा और चौथी ओर इस सादे वेश के इस युवक के साथ प्रतिस्पर्द्धा। यह सब उसके [illegible] के एक पलड़े को भारग्रस्त करके बोली बोलने

को उत्तेजित कर रहे थे, परन्तु दूसरी ओर एक साधारण से मकान के लिए इतने अधिक धन के त्याग का दुःख दूसरे पलड़े को पकड़-पकड़ दबाकर नीचे ले जाने का प्रयत्न कर रहा था। युवक ने एक व्यंग्य की हंसी हंसी। उसने समझ लिया कि सेठ अपनी सीमा के निकट पहुंच रहा है। परन्तु जिस प्रकार मछुए बड़ी-बड़ी मछलियों को खेल खिलाकर पकड़ते हैं, उसी तरह उस युवक ने उस वणिक को तड़पाना चाहा। उसने कहा, "दस हज़ार एक सौ दो।"

सेठ ने झुककर एक विकृत उच्च स्वर और कुछ उल्लास-मिश्रित भाव से कहा, "ग्यारह हज़ार एक!"

युवक ने कहा, "बारह हज़ार।"

थोड़ी देर के लिए वहां स्तब्धता छा गई। युवक ने फिर युवती की ओर देखा और उसके मन में युवती के कमरे के मानचित्र का उदय हुआ। उसमें जो लाल रेखा विभिन्न स्थानों को सम्बन्धित करती हुई खींची गई थी, वह एक अनादि, अनन्त विस्तृत राजपथ के समान जगत्-भर में फैली हुई दिखाई देती थी। उसने मन ही मन कहा, 'तुम्हारे लिए ही अपना सर्वस्व स्वाहा कर रहा हूं। जाओ, करो भ्रमण। वर्षों तक भ्रमण करती रहो। मैं तो इस छत की कोठरी में बैठकर अपना महाकाव्य पूरा करके रहूंगा। मेरी इस अज्ञात कृति के पूरे होने में विघ्न डालने के लिए ही यह सब षड्यंत्र किया गया मालूम पड़ता है, नहीं तो क्या पर्यटन आगे-पीछे नहीं हो सकता था? क्या मैं स्वयं साथ जाकर भ्रमण नहीं करा दे सकता था?'

सेठ युवक को पूरता था, पर अब आगे बोलने के लिए उसका साहस नहीं होता था। उसने युवक की ओर आंख

फाड़कर देखते हुए कहा, "आप क्या पागल हो गए हैं। इस साधारण से पुराने मकान का इतना अधिक मूल्य! आपको पता भी है कि आप क्या खरीद रहे हैं?"

युवक ने घृणा-व्यंजक श्लेष के स्वर में कहा, "श्रीमान्, आप एकांगी दृष्टि से देख रहे हैं।"

कुछ लोग 'एकांगी' का मतलब 'ऐंचतान' समझकर हंस पड़े। झेंपते हुए क्रोधपूर्वक मारवाड़ी सेठ ने चारों ओर देखा। हंसी बन्द हो गई।

युवक ने फिर कहा, "इस मानसिक मूल्य को स्वर्ण न माप सकता। लक्ष्मी का वाहन सरस्वती की वीणा-झंकार को क्या समझेगा।" फिर उसने नीलाम करनेवाले की ओर देखकर कहा, "आप चुप क्यों हैं? सेठजी अपनी सीमा प पहुंच चुके, अब निवटारा कर डालिए।"

परन्तु सेठ ने थैलियां टटोलते हुए अपने मुनीम की ओर देखा। परस्पर कुछ संकेत-सा हुआ। फिर बोले, "बार हज़ार एक सौ एक!"

युवक ने उदासीनता के भाव से कहा, "तेरह हज़ार!"

इसपर बनिया चिल्ला उठा, "तेरह हज़ार!"

नीलामवाले ने यह लक्ष्य न करके कि सेठ ने आश्चर्य प्रकाश के लिए 'तेरह हज़ार' कहा है, यह समझा कि वह भी 'तेरह हज़ार' की ही बोली बोल रहा है। उसने धीरे से कहा, "सेठजी, एक-दो मुद्रा कुछ तो अधिक बोलिए।"

सेठ ने बिगड़कर उसे एक धक्का दिया, "मैं क्या मूर्ख हूं!"

सेठ और उसके मुनीम के बाह्यचक्षुओं पर आवरण-से पड़ गए, उनकी दृष्टि से अब तक जो दिलचस्पी टपक रही वह लुप्त हो गई। ऐसा मालूम होता था मानो वे वहां

उपस्थित ही नहीं हों। युवक की बोली ही अन्तिम निष्पत्ति थी। चारों ओर लोगों ने तालियां पीट दीं। युवक की जय-जयकार होने लगी। सेठजी के जाते समय लोगों ने उस सम्भ्रम के साथ रास्ता नहीं छोड़ा जैसा आते समय छोड़ा था। जनता सदा विजेताओं का साथ देती है। सामूहिक चित्त असफलता से घृणा करता है। व्यंग्य और श्लेषयुक्त आलोचनाएं सेठजी के विरुद्ध उनकी उपस्थिति में ही होने लगीं। प्रस्थानोन्मुख सेठ की ओर उंगली उठाकर एक छोटे बालक ने, जो अपने बूढ़े दादा के कन्धे पर बैठा यह तमाशा देख रहा था, कहा, "अरे, सेठ की तोंद में भी थैलियां भरी हैं! देखो कैसा सभल-सभलकर चल रहा है!"

लोग सिलसिला पड़े। युवक ने चारों ओर देखा। युवती का कहीं पता न था। अकस्मात् उसके हाथों पर पानी की कुछ बूंदें गिरीं। उसने देखा—रसोइया उसके पास खड़ा रो रहा था। युवक जगनिक की भी आंखें अश्रुहीन नहीं थीं। रसोइये ने गद्गद कण्ठ से कहा, "महाराजजी, आप धन्य हैं। इतनी महान मूर्खता केवल योद्धा और कवि ही कर सकते हैं!"

युवक ने कुछ म्लान स्वर से कहा, "नहीं, नहीं, रसोइये भी कर सकते हैं!" आज वे दोनों एक ही धरातल पर थे। "तुमने भी अपना सर्वस्व देकर इस झोंपड़े की रक्षा की कोशिश की, और मैंने भी!"

आठ

रात्रि का समय था। आंगन में युवक और रसोइया बात कर रहे थे। युवक अस्थिर था। वह बातें करते-करते टहल-

कहानी कह रहा था और अपने-आपको बुद्धिमान सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा था। बोला, "मैं पागल नहीं हूं। मुझे भी तो रहने के लिए स्थान चाहिए। किराया पर न मिला, खरीद लिया। यह कामकाज जिस प्रकार अब तक चलता आया है वैसे ही चलता रहेगा। तुम और मैं दोनों कुछ मिल-कर दिखा देंगे कि क्यों कितनी अनावश्यक होती है। और यह जो ऊपर कोठरी है उसीमें बैठकर मैं महाकाव्य लिखूंगा। जिस कमरे में अब हूं, वह पथिकों के रात्रिवास के लिए खोल दिया जाएगा, जिससे 'ढाई दिन के झोंपड़े' में पथिक रात्रि-वास नहीं कर सकते—इसकी जो कलंक-कालिमा है, वह धुल जाएगी।..."

इसी समय हाथ में प्रदीप लिए युवती आ पहुंची। अब दीपक के प्रकाश में उसमें न मालूम कहां का सौंदर्य फूटा पड़ रहा था।

"बधाई, महाशयजी!" उसने निकट आकर कहा।

युवक ने चुटकी लेते हुए कहा, "आपने कहा था न कि मैं जो चाहता हूं वही करके छोड़ता हूं।"

युवती ने मुस्करा दिया। युवक ने सोचा कि यह तेरह हजार मुद्रा की मेरी हुण्डी का भुगतान पाकर उसमें मग्न हो गई होगी और उन मुद्राओं से किस प्रकार आनन्द और विलासिता के साथ जीवन व्यतीत करेगी, यही सोचकर मुस्करा रही होगी। उसने उद्धत वदान्यता के साथ कहा, "श्रीमतीजी जब तक चाहें यहां ठहर सकती हैं और अभी भी इसे अपना घर समझ सकती हैं। मैं अपना कमरा खाली कर दूंगा और छत की कोठरी में जा रहूंगा। जब तक आप हैं आपका ...ति का व्यय भी मेरा ही होगा।"

युवती ने सहज भाव से कहा, "धन्यवाद ! पर इसकी कोई ग्रावश्यकता नहीं है। मैंने सब तैयारी कर ली है। कल प्रत्यूष में ही मैं यहां से महोबे जा रही हूं। वहां से किसी बड़े यात्री-दल के साथ बड़े-बड़े नगरों को देखती हुई उस मार्ग से आगे बढ़ूंगी जिसे भेदते हुए पाण्डव हिमालय में गलकर स्वर्ग गए थे।"

युवती की आंखों में एक दिगन्तभेदी दृष्टि थी। मानो वह इच्छा-अश्वारूढ़ होकर उस स्थान को त्याग चुकी हो। युवक को यह मानसिक व्यवधान असह्य हो उठा। युवती को वर्तमान स्थान और काल मे घसीट लाने के लिए उसने व्यंग्य का आश्रय लिया। पुरुष के लिए यह स्वाभाविक धर्म-सा है कि वह सदा स्त्री के सुख-दु:ख का दाता स्वयं बनना चाहता है। इस समय भारत के बड़े-बड़े नगर, तीर्थ-स्थान और पर्वत जगनिक की ईर्ष्या के भाजन बन रहे थे। यदि उसका वश चलता तो वह उन स्थानो को स्वयं देख लेने के बाद विलुप्त करता हुआ चला जाता। तब तो फिर यह नौबत न आती।

युवक ने तीव्र कण्ठस्वर में कहा, "पंच-पाण्डवों मे से केवल युधिष्ठिर ही हिमालय भेदकर स्वर्ग जा पाए थे—द्रौपदी तो रास्ते में ही गलकर गिर पड़ी थी। अब दूसरी द्रौपदी चली हैं हिमालय भेदने !"

युवती एक झटके के साथ स्वप्न-राज्य से कूदकर वास्तविक जगत् मे आ पहुंची और सुप्तोत्थित फणिनी के समान फुफकारकर बोली, "जिस स्थान पर महाशयजी रहें, वहां रहने की अपेक्षा तो हिमालय में गलकर मर जाना ही अच्छा है।"

युवती इन शब्दों के कहने के साथ ही अपने कमरे के अन्दर चली गई और धड़ाम से दरवाजा बन्द कर लिया। युवक के हृदय में एक सूक्ष्म विजयोल्लास की बिजली दौड़ गई। उसमें युवती के हृदय को आघात पहुंचाने की शक्ति तो है, दो ही चार शब्दों में उसकी दिगन्तभेदी मानसिक उड़ान को रुद्ध करके वर्तमान जगत् में घसीट लाने की ताकत तो है! चली थी स्थिर और शान्त बनकर रहने! दूसरे को अशान्त करके स्वयं बुत बनकर बैठी रहने। अब मालूम होगा कि स्त्री ही पुरुषों को चंचल और अशान्त नहीं बना सकती। पुरुष भी स्त्री की अन्तर्भावना को प्रेरित कर उसे जगा सकता है।...वह अपने कमरे से सरोद उठा लाया और प्रांगण में बैठकर विदाई का गान गाने लगा। गाने की समाप्ति के साथ ही, युवती के कमरे का दीपक अकस्मात् बुझ गया।

नौ

युवक घोड़ा दौड़ाते हुए हिमालय पर्वत की चोटियों की ओर चला जा रहा था। उसके साथ ही घोड़े पर आगे की ओर युवती बैठी थी। वह कृतज्ञतापूर्ण गद्गद कण्ठ से कहती जाती थी, 'यदि आप साथ न आए होते तो मैं एक अनभिज्ञ और असहाय होने के कारण बड़ी कठिनाई में पड़ जाती।' पर्वत के चारों ओर बड़े-बड़े बर्फ के ढोंके यत्र-तत्र लुढ़क रहे थे। निपुणता और कौशल के साथ उनको बचाते हुए युवक घोड़े को तीव्र वेग से परिचालित कर रहा था। अकस्मात् एक बड़ा भारी उपल-खण्ड लुढ़ककर सर्राता हुआ घोड़े पर गिरा। चौंककर उछला तो युवक की नींद टूट गई।

रसोइया दरवाजा खटखटाकर चिल्ला रहा था, "महाशयजी, उठिए, दरवाजा खोलिए। श्रीमतीजी के जाने का समय हो गया। कुछ सामान इस कमरे में रह गया है।"

युवक का सारा शरीर पसीने से ओतप्रोत था। जग उठने पर भी स्वप्न का अन्तिम दृश्य धीमी गति से ही मानसिक पट से विलग हो रहा था। उसने अस्त-व्यस्त होकर जल्दी से कुछ कपड़े पहने और दरवाजा खोलकर बाहर आ गया।

रसोइये ने तिरस्कारपूर्ण स्वर से कहा, "श्रीमतीजी के जाने का समय हो गया। आप बड़ी गहरी नींद सोते हैं। उनकी कई प्रिय वस्तुएं इस कमरे में हैं जिन्हें वे साथ ले जाना चाहती हैं। आप तब तक नीचे बैठ जाएं तो ये अपना सामान संभाल लें।"

युवक ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह कुछ कपड़े, अंगोछा और लोटा लेकर नदी की ओर चला गया। झोंपड़े के सामने सारा गाव उपस्थित था। युवक को देखकर लोग तरह-तरह की कानाफूसी करने लगे। किसीकी ओर ध्यान न देकर वह सीधे नदी की राह चला गया।

युवक जब नदी से लौटा तो अपराह्न हो चुका था। दूर से ही उसे आज 'ढाई दिन का झोंपड़ा' उदासीनता की मूर्ति-सा दिखाई दे रहा था। भीतर घुसकर देखा तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उस घर की प्रत्येक वस्तु युवती के वियोग मे रो रही है। वह गद्दे पर बैठकर थोड़ी देर तक अपने मन को किसी दूसरी ओर लगाने की चेष्टा करता रहा, पर उसके नेत्र बरबस चारो ओर घूमने लगे। दीवार पर दृष्टि गई तो भारत का यह मानचित्र नहीं था जिसमें प्रत्येक नगर को मिलानेवाली लाल रेखा खींची गई थी—उसकी जगह केवल

कीलों के पास खाली निशान रह गए थे और एक बृहत् शोकोन्-
मादक स्थान था जो उसकी मानसिक रिक्तता की भौतिक
प्रतिच्छाया-सी मालूम होती थी। पुस्तकों का स्थान रिक्त
होकर बहुत अप्रिय लग रहा था। कमरे से निकलकर वह आंगन
में आया, किन्तु यहां भी उसे कोई वस्तु अपनी ओर न खींच
सकी। सारा 'ढाई दिन का झोंपड़ा' पक्षीविहीन पिंजड़े की
भांति सूना हो रहा था। वह शिथिल होकर आंगन में एक
ओर बैठ गया और बड़ी देर तक बेमन-सा बैठा रहा।

रसोइये ने आकर पूछा, "आपने लौटने में बड़ी देर लगा
दी। मैंने रसोई उठा दी। जल्दी से कुछ हलवा आदि बना
दूं?" और प्रत्युत्तर की अपेक्षा करते हुए ही कह चला,
"किसी रानी-महारानी को भी लोग इतना मान नहीं देते।
सारा गांव उमड़ आया था। सेठ-साहूकार से लेकर
स्वयं गढाध्यक्ष तक पधारे थे। श्रीमतीजी के समान संसार
में कोई नहीं है। गांव के गरीब-गुर्बे सब रो रहे थे।"

युवक विरक्त हो उठा। कहारिन पास खड़ी थी। उसके
आंखों में आंसू थे। झोंपड़े की दीवारें तक अपने नवीन स्वामी
को अपनाने के स्थान में उदास भाव से जैसे मुंह फेरकर दूर हट
गई थीं। दीवारों पर टंगे हुए तांबे-पीतल के बर्तन जो पहले
चमका करते थे वे भी मलिन होकर कान्तिहीन मालूम हो
रहे थे। युवक वहां से निकलकर छत पर जा बैठा। जीवन-
नाटक की एक यवनिका गिर चुकी थी। अब स्थिरचित्त
से जब वह पूर्वघटनाओं की पुनरावृत्ति करने लगा, तो उसे
अनुताप होने लगा। वह अपनी समझ के फेर पर पछताने
लगा। वह मानचित्र, उसपर की वे लाल लकीरें, वे भ्रमण-
वृत्तान्त की पुस्तकें, पहले दिन जब वह आ रहा था उस समय

गाने के वे शब्द एक बुद्धिमान के लिए यथेष्ट संकेत थे कि उस युवती की बाह्य प्रशान्तता के अन्दर एक ज्वालामुखी पर्वत सुलग रहा था। न जाने उसकी बुद्धि कहां चरने चली गई थी कि उसने उसको ठीक तौर से नहीं समझा। आखिर उसे भी तो यही रोग था। वह भी तो नवीनता-दर्शन की उत्सुकता लेकर घर से निकला था। ऐसी ही अस्थिरता के कारण तो वह चक्कर लगाते हुए इधर आया था। कहां तो उसे युवती की व्यथा से पीड़ित होना चाहिए था और कहां उसने सवेदना के स्थान में केवल उसके कटे घाव पर नमक छिड़कने के सिवाय कुछ भी नहीं किया। युवती का त्याग और विसर्जन वास्तव में सराहनीय था। अपने क्रीड़ास्थल, अपने सर्वस्व को छोड़कर वह न जाने कहा किन विशद-संकुल स्थानों में भटकती हुई जब ऊब उठेगी तो उसे विश्राम के लिए, आश्रय के लिए कोई अपना स्थान नहीं मिलेगा। सहानुभूति के कुछ अनुपात के साथ यह सोचकर कि वही युवती को उसके क्रीड़ास्थल से भगाने का कारण बना, युवक के मन में स्वतिरस्कार की भावना इतनी तीव्र हो चली कि उसके हृदय का रक्त तीव्र वेग से मस्तिष्क की ओर दौड़ रहा था। कनपटियों में दर्द होने लगा था। गले में कोई चीज अटकी-सी मालूम होने लगी। यह उसके जीवन में पहला ही अवसर था जब उसने अपने-आपको निराधार-सा पाया। परन्तु जन्मगत अहंकार का स्वभाव अपने को तिरस्कृत होते देखकर कह उठा, "एक हठीली स्त्री मनमानी बात कर बैठे तो उसके लिए मैं क्या करूं—जाने दो! अपने किए का फल आप भोगेगी।" फिर सोचने लगा, 'कम से कम उसे इतना तो समझा ही देना चाहिए था कि यात्रा में किन-किन चीजों

को [illegible] बनाती है, क्या-क्या कल्पनाएं देख डाली है, कहां किस देवालय के सम्मुख आना चाहिए—क्या होता यदि दोनों ने एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न किया होता। वह भी तो युवतीत्व उद्वेलित इधर-उधर भटक रहा है। बचपन से उसके और तो ऐसे ही अलग-अलग थे। और तो इसी प्रकार चलता सदैव देख उसे कुछ मुड़ और रूपों में परिवर्तित कर लेते ही भटक रहा था, जैसे वह मरेगा नहीं। पर थोड़ी देर बाद उसके सोचने का ढंग बदला तो वह कहने लगा, "मैं उसके साथ होता तो उसे साथ में और ही आधार मिलता। मैं अपने देखे हुए इस का उसकी दृष्टि से देखता।"

केवल विचार-तरंगों में बह जाने से और भी कष्ट आधार मिलते हैं। मन के इस हिल्लोल को रोकने के लि मानसिक झटके के साथ उठ खड़ा हुआ। उसके मुह से बरबस निकल पड़ा, "स्त्रियों के लिए इस संसार में विराम नहीं। वे आएं तो जंजाल, चली जाएं तो स्मरण !"

सन्ध्या हो चुकी थी, परन्तु आज सारे दिन उपवास के बाद भी न युवक को भूख लगी थी और न वह क्लान्त हुआ। वह दौड़कर अपने कमरे में गया और झट वस्त्र एवं तलवार से सुसज्जित हो सरोद को पीठ पर लटका लिया। अपने अधूरे ग्रन्थ की पाण्डुलिपि और मसिपात्र आदि को उसने नहीं लिया। कमरे से निकलकर वह घुड़साल में गया और वहां अपने ही हाथों घोड़े के सामने से उसके चारे का पात्र हटाते हुए कहा, "मैंने भी आज कुछ नहीं खाया, तुझे भी [illegible] जरूरत नहीं।" और जीन कसकर लगाम लगाई। रसोइये [illegible] चिल्लाकर पूछा, "महाशयजी, इस [illegible]

पर कहां जा रहे हैं ?"

युवक चौंक पड़ा। अब तक मानो वह ज्ञानशून्य होकर ही यह सब कर रहा था। उसे यह भी न मालूम था कि वह कहां जा रहा है। रसोइये के प्रश्न ने अकस्मात् उसकी विचार तरंग को स्थिर कर दिया। उसने घोड़े पर चढ़ते-चढ़ते उत्तर दिया, "द्रौपदी के चरण-चिह्नों पर।"

रसोइया कुछ चिल्लाता ही रह गया। केवल इतने ही शब्द युवक के कान में पहुंचे, "भोजन तो कर लेते…कवि पागल…"

भूखा घोड़ा मालिक की एड़ खाकर हवा से बातें करने लगा।

दस

ऊबड़-खाबड़ मार्ग की परवाह न करते हुए अंधेरी रात में तीव्र वेग से घोड़ा दौड़ाता युवक जगनिक चला जा रहा था। शरीर-सचालन द्वारा मानसिक उद्वेग को रोकने का प्रयत्न करना उसके लिए कोई नई बात नहीं थी। मानसिक विकार के लिए दो ही ओषधियां होती हैं—सशक्तों के लिए शारीरिक परिश्रम और अशक्तों के लिए आकण्ठ भोजन। मस्तिष्क को विमूढ़ बनाने के लिए इस नश्वर जगत् में मादक पदार्थ के अतिरिक्त और कोई ओषधि नहीं है। युवक ने घोड़े को एड़ लगाई। एक प्रहर रात बीत गई थी फिर भी वह तीव्रता से आगे बढ़ता ही जा रहा था। परन्तु अपनी मानसिक विह्वलता के अनुपात से वह रफ्तार उसे कम लग रही थी। आगे का रास्ता चन्दगढ़ के फाटक के भीतर होकर जा

था। अब काफी रात बीत चुकी थी। फाटक बन्द हो चुका था। युवक क्षण-भर रुककर फाटक खुलवाने के विलम्ब का अनुमान करने लगा। वह भी सोचने लगा कि शायद फाटक न खुले। इसपर उसने मुख्य मार्ग छोड़कर जंगल के अन्दर घोड़े को चला दिया। समतल भूमि न होने के कारण घोड़ा अब तेज़ी से नहीं दौड़ सकता था। वृक्ष की डालियाँ और झाड़ियों के कांटे युवक के शरीर को क्षत-विक्षत कर रहे थे। उसने इसकी भी परवाह न की और घोड़े को आगे बढ़ाता ही चला गया। एक ही घण्टे बाद घोड़े का बुरा हाल हो गया। वह लड़खड़ाने लगा।

युवक ने घोड़े की यह अवस्था देखकर कहा, "तुझे भी इसी समय लड़खड़ाने की सूझी है!" और लगाम का एक झटका दिया। घोड़ा चकित होकर हिनहिना उठा। उसके स्वर में तिरस्कार का भाव था। जगनिक का इस घोड़े के साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार पहला ही था। यदि घोड़े में बोलने की शक्ति होती तो वह अवश्य कहता कि 'अपने पहले षड्यन्त्र की पूर्ति के लिए मुझे लंगड़ा कर दिया था और अब दूसरे षड्यन्त्र की पूर्ति के लिए इस अंधेरी रात और दुर्गम मार्ग में दौड़ाकर मारना चाहते हैं!'

युवक घोड़े पर से उतर पड़ा। उसने अपनी चादर से एक टुकड़ा फाड़कर घोड़े के लंगड़ाते पैर में बांधा और फिर बढ़कर घोड़े को चलाने का प्रयत्न किया, परन्तु घोड़ा बिदकने लगा। अकस्मात् पास से ही एक कठोर आवाज आई, 'शेर ओर से!' युवक घोड़े पर से कूद पड़ा। उसका पर पड़ा। उसने फुर्ती से सरोद को घोड़े की जीन । और तलवार निकालते हुए पास की झाड़ी

की ओर पीठ करके लड़ने को तैयार हो गया। टुकड़ी ने उसपर आक्रमण कर दिया। अस्पष्ट अन्धकार में युवक यह न मालूम कर सका कि आक्रमणकारी कौन और कितने हैं। अस्त्रों की झनझनाहट से उसने अनुमान लगाया कि चार-पांच आदमी होंगे। लड़ते-लड़ते युवक ने पूछा, "तुम लोग कौन हो, क्या चाहते हो?"

उसी कर्कश स्वर ने उत्तर दिया, "धन और प्राण।"

युवक ने उस शब्द को लक्ष्य करके पैंतरा बदला और तलवार का एक हाथ मारा। वार खाली गया और एक अट्टहास सुनाई पड़ा। एक ओर से उसके सिर पर ऐसा आघात हुआ कि वह तिलमिला उठा।

युवक ने देखा कि सिवा छल के आत्मरक्षा का और कोई मार्ग नहीं रहा है। वह घुटने टेककर तलवार चलाने और धीरे-धीरे आगे खिसकने लगा। किसी नर्म वस्तु से तलवार को बाधा पहुंची और घायल व्यक्ति ने आर्तनाद किया। युवक उछाल मारकर सामने कूद पड़ा। उसका एक पैर किसी गिरे हुए शरीर पर पड़ा। गिरा हुआ व्यक्ति जोर से कराह उठा।

क्षण-भर के लिए आक्रमणकारी रुक गए। युवक ने गिरे व्यक्ति के गले पर तलवार की नोक रखकर कहा, "तू ही इस टोली का सरदार मालूम होता है। अपने आदमियों को रोक, नहीं तो···"

अन्तिम दो शब्दों के साथ युवक ने तलवार की नोक गिरे हुए व्यक्ति के गले से सटा दी।

गिरे हुए आदमी ने व्यथित स्वर से पुकारकर कहा, "हाथ रोक लो, भाइयो!"

चकमक रगड़कर आक्रमणकारियों में से एक ने छोटी-सी मशाल जलाई। युवक का अनुमान ठीक निकला। उसे चार आदमी घेरे हुए थे और पांचवां—सरदार उसके पैर के नीचे पड़ा हुआ था।

युवक ने डाकू सरदार से कहा, "मैं तो मरूंगा ही, पर तुझे मारकर।"

गिरे हुए डाकू सरदार ने कहा, "नहीं, मुझे मत मारो। तुम्हारा कुछ न बिगड़ेगा।"

युवक ने मौके से लाभ उठाते हुए कहा, "मुझे एक घोड़ा चाहिए। किसी बहुत ज़रूरी काम के लिए मुझे जल्द जाना है। प्रतिज्ञा करो कि मेरी बात मानोगे और कोई धोखा न दोगे, तो मैं छोड़ देता हूं।"

सरदार ने देवी की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा की, और युवक ने अपनी तलवार की नोक उसके गले पर से हटा ली। सरदार उठ खड़ा हुआ। उसकी जांघ बुरी तरह से घायल हो गई थी। उसने एक डाकू को नज़दीक बुलाकर उससे घोड़ा लाने को कहा। थोड़ी देर बाद एक बढ़िया घोड़ा आ गया। युवक ने कुछ स्वर्ण-मुद्राएं निकालकर डाकू सरदार को देते हुए कहा, "तुम्हारी तरह मैं डाकू नहीं हूं, यह लो घोड़े का दाम और उससे भी अधिक।"

युवक ने अपने घोड़े पर से सरोद उतारकर अपनी पीठ पर लटकाई और अपने घोड़े को डाकुओं के हवाले करते हुए बोला, "अगर कुछ एहसान करना चाहते हो तो इस घोड़े को 'ढाई दिन के झोंपड़े' पर पहुंचा देना। मैं विश्वास करके तुम्हारे पारिश्रमिक के लिए यह और देता हूं।" और युवक ने दो और स्वर्ण-मुद्राएं उसके हाथ में रख दीं।

सरदार ने कहा, "हम डाकू हैं ; पर बेईमान नहीं। आप बेफिक्र रहें, घोड़ा पहुंचा दिया जाएगा।"

युवक नये घोड़े पर सवार हो आगे बढ़ा। एक चौराहे के पास जाकर घोड़ा अपने-आप रुक गया। दिन निकल चुका था। युवक भी असमंजस में था कि युवती किधर गई होगी। उसने अनुमान किया कि वह हरिद्वार की ओर गई होगी और यात्री चाहे रथडोल पर हों या पैदल, चलते धीरे-धीरे होंगे। उसने सुविस्तृत राजमार्ग आ जाने के कारण घोड़े को दौड़ाया। नाहरगढ़ पहुंचकर उसने एक पानवाली की दुकान पर पूछताछ की, परन्तु उत्तर मिला कि उस मार्ग से अभी कोई यात्री-दल नहीं गुज़रा है। वह वहां से पीछे की ओर मुड़ा और घोड़ा बढ़ाकर एक-दूसरे ग्राम मे पहुचा। वहां पता लगा कि पहाड़ी नदी में भीषण बाढ़ आ जाने के कारण नदी का पुल टूट गया था, इसलिए यात्रियों का एक दल नाव में बैठकर नदी पार करते समय, नाव उलट जाने के कारण डूब गया।

क्षण-भर के लिए युवक स्तब्ध-सा रह गया। उसने हर प्रकार से यह जानने का प्रयत्न किया कि यात्री-दल में वह युवती भी थी, या नहीं। परन्तु इससे अधिक कुछ मालूम न हो सका कि यात्री-दल डूब गया।

युवक गंवार बुद्धि को शाप देने लगा। वह उतावला हो उठा। वह युवती लाखों में भी छिप नहीं सकती थी। ऐसा कोई सजीव मन नहीं था जिसपर उस रमणी का प्रभाव न पड़े। जो एक बार उसे देख लेता था वह कभी भूल नहीं सकता था, उसके मन पर एक गहरी छाप रह जाती थी। परन्तु शुष्क हृदय और निर्जीव मनवाले गंवार कुछ न बता सके।

युवक पसीने-पसीने हो रहा था। उसे यह भी ज्ञान नहीं रहा कि माथे से ढुलककर आंखों में भर जानेवाला पसीना वास्तव में पसीना है या आंसू। एक शक्तिशाली व्यक्ति के लिए हताशाजन्य वेदना के समान संसार में दूसरी पीड़ा नहीं है। वह बिना विश्राम किए ही वहां से पीछे मुड़ा। एक दूसरे ग्राम में पहुंचकर उसने फिर पूछताछ आरम्भ की।

"हां, एक यात्रियों का समूह इधर से गुजरा था। उसमें कई स्त्रियां थीं। एक बुढ़िया थी, उसीको तो नहीं पूछ रहे हैं?" एक ग्रामीण नाई ने कहा।

युवक ने क्रुद्ध होकर प्रगल्भ नाई को एक धक्का मारा। एक अस्सी वर्ष के बुड्ढे ने नाई को डांटकर कहा, "मूर्ख, देखता नहीं है—सुन्दर और सरोदधारी युवक योद्धा बुढ़िया को ढूंढेगा! ये किसी सुन्दरी नवयुवती की खोज में होंगे।"

"नहीं बेटा," वृद्ध ने युवक की ओर रुख करके कहा, "कोई कुमारी कन्या नहीं थी। हां, उस यात्री-दल में से एक टुकड़ी बहुत तड़के ही आगे चली गई थी—शायद उनमें कोई रही हो।"

ग्रामीणों की भीड़ इकट्ठी होने लगी थी। निराश युवक फिर वहां से चल दिया। उसने समझ लिया कि वह डूबकर मर गई। फिर सोचा कि महोबे जाकर वहीं से पता लगाना आरम्भ करना चाहिए। वह हठीली तो है ही, सम्भव है किसी और रास्ते चली गई हो—यात्रियों का समूह उसे अच्छा न लगा हो।

महोबे पहुंचकर भी युवक को इतना ही मालूम हो सका कि वह उसी यात्री-दल के साथ गई थी जो नाव उलट जाने के कारण डूब गया। एक बार तो युवक ने सोचा कि जहां

पर नाव डूबी है वहीं जाकर एक स्मृति-स्तम्भ बनवाए और निराशाजन्य प्रेम पर एक दूसरा महाकाव्य लिखे, फिर सोचा—नहीं, वहीं धूनी रमाकर संसार त्याग दे और वैरागी हो जाए। परन्तु उसे ध्यान आया कि इसीसे तो उसका महाकाव्य अधूरा ही रह जाएगा। उसके शून्य हृदय से जो हाहाकार-ध्वनि निकल रही थी, उसको बन्द करने के लिए एक सह-दुःखी की आवश्यकता थी। यदि उसका वश चलता तो वह कहीं एकान्त में बैठकर सिर पीट-पीट रोता। केवल उसकी थोड़ी-सी नासमझी के कारण ही वह युवती अपना सर्वस्व वेचकर चली गई। यदि उसे थोड़ा-सा संकेत भी मिल जाता तो वह भी भ्रमण के लिए उसके साथ हो लेता।

सोचते-सोचते जगनिक के हृदय में भीषण ग्लानि जाग उठी। उसे प्रतीत हुआ कि युवती के डूब मरने का दायित्व उसीपर है—न वह अपने घर से निकलने पर बाध्य होती और न यह दुर्घटना घटित होती। फिर उसे विधि-चक्र पर क्रोध आया। यदि युवती के जीवन का अन्त ही करना था, तो उसी समय क्यों न किया जब वह उसकी ओर इतना आकर्षित नहीं हुआ था। ठीक जिस समय उसके बिना जीवन शून्य हो रहा है, उसी समय मूर्ख, निठुर यमराज को अकाल में ही उसके प्राण-हरण की सूझी। युवक ने सोचा कि वह अपने महाकाव्य में भी तो विरह-वेदना के रस-स्रोत बहाने के लिए न जाने कितने नायक-नायिकाओं को सकटा-कुल स्थिति में डाल चुका है, कितनों ही के प्राण-हरण करवा चुका है। विधाता ने वास्तविक जगत् में उसीका बदला लिया है।

ऐसा अद्भुत क्षमताशाली कवि जिसकी अभ्रभेदी कल्पना की उड़ान निर्जीव छायावाद-मात्र न होकर शक्ति सामर्थ्य-समन्वित, वीरता सम्मिश्रित थी, जब अपने जीवन में प्रधान घटनाओं का पात्र स्वयं बन चुका है, तो उसकी रचना में सजीवता और यथार्थता क्यों न हो ; परन्तु जिस अस्थिरता ने अस्पष्ट रूप से आरम्भ होकर धीरे-धीरे उसके शरीर और मन को चपल कर दिया था और जिस कारण वह एक शून्यता का अनुभव करके बेचैन हो जाया करता था उसे न समझकर भी वह इतना तो समझ गया था कि उसने अपने-आपको खो दिया है; किन्तु जिस प्रकार माली के बिना वाटिका की, कद्रदान के बिना कला की उन्नति नहीं हो सकती, उसी प्रकार बिना प्रेम के जीवन का रस नहीं मिल सकता। वस्तुओं को अपनाने की जो प्रवृत्ति मनुष्य-मात्र में जन्म से होती है, वह केवल हृदय की शून्यता को पूर्ण करने के लिए। सवेदना के लिए क्यों सहचरी की आवश्यकता होती है, यह भी उसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत है। पुरुष में जो स्त्रीत्व है और स्त्री में जो पुरुषत्व है वह स्वलिंग की खोज करता है। इस आध्यात्मिक क्षुधा की निवृत्ति न होने तक जीवन शून्य और अधूरा ही रहता है। सम्मार्जित मन के लिए यौवन के विकार शारीरिक इन्द्रिय-तृप्ति से परितुष्ट नहीं होते, उन्हें चाहिए हृदय का प्रतिदान और विनिमय—सर्वस्व अर्पण करने के लिए कोई आधार, सर्वस्व ले लेने के लिए ऐसा पात्र जो स्वेच्छा से अपना उपहार दे सके और ऐसे उपहार लेने की लालसा रखे। ऐसा हृदय-विनिमय जब पुरुष के साथ पुरुष का और स्त्री के साथ स्त्री का होता है उसे मित्रता या सखीत्व कहते हैं और जब भिन्न लिंगों

में होता है सो उसे प्रेम कहते हैं। किन्तु युवक जगनिक को किसी व्यक्ति-विशेष के साथ नहीं, प्रत्युत प्रेम के साथ ही प्रेम हो गया था। परन्तु लेखक होने के कारण इस रहस्यमय मौलिक स्मृतियों की अगोचर भाव-धारा को वह इन्द्रिय-जगत् में परिवर्तित करना चाहता था। अब अकस्मात् उसकी समझ में आ गया था कि बिना एक भौतिक आधार के इस आध्यात्मिक प्रेम का आस्वादन केवल योगी ही कर सकते हैं—सांसारिक के लिए तो चाहिए कोई प्रेम-पात्री। इस प्रेम-पात्री की प्रबल आवश्यकता का अनुभव करके ही वह उसे ढूढ़ने के लिए प्राण हथेली पर लेकर निकला था, परन्तु विधाता ने उस एकमात्र स्नेह-पात्री का भी अपहरण कर लिया।

युवक यह बातें सोचता जा रहा था। घोड़े की लगाम ढीली थी। वह मनमाना धीरे-धीरे चला जा रहा था। युवक को यह मालूम भी न था कि वह किधर और कहां जा रहा है। अचानक उसके कान में एक गाने के मधुर और परिचित बोल पड़े :

"उसी मार्ग से आऊंगी,
प्रीतम नेह निभाऊंगी! ...."

वह ज़ोर से चौंक उठा और घोड़े की लगाम ज़ोर से खिंच उठी। घोड़े ने सामने के दोनों अगले पैरों से उछाल मारी और युवक ज़मीन पर गिर पड़ा। एक पत्थर पर गिर लगने के कारण उसके सिर में बड़ी चोट आ गई। फिर भी हतबुद्धि-सा होकर वह लड़खड़ाता हुआ उस गाने की आवाज़ की ओर लपका। उसे अब तक यह नहीं मालूम था कि वह ...न पर है और किस दिशा में जा रहा है। एक बड़

के पेड़ के नीचे एक झाड़ी के पास कुछ गठरियाँ रखी थीं। पास ही तीन-चार मजदूर बैठे थे। गाने की आवाज़ बावड़ी की भीतरी सीढ़ियों पर से आ रही थी। धूलि-धूसरित और लहूलुहान होते हुए भी युवक उस ओर दौड़ पड़ा। पसीने, धूल और खून के मिल जाने के कारण उसे आंखों से कोई चीज़ स्पष्ट नहीं दीख रही थी। वह तेज़ी से बावड़ी की सीढ़ियों से नीचे उतरा। युवती एक सीढ़ी पर बैठी अब भी पूर्ववत् गा रही थी। युवक के हृदय के संशय, निराशा, भय, उत्कण्ठा और अनुराग ने मिलकर उसे तड़पाकर पागल-सा कर दिया था। ये सभी भावनाएं इस समय क्रोध के रूप में परिणत हो चुकी थीं। यह वही अवसर था जो साधारण बुद्धि के लोगों के लिए अगोचर-सा होता है। वह एक पागल के समान युवती के हाथ पकड़कर झकझोरने लगा।

"तुम मरी नहीं ! मरी नहीं !" उसने अत्यन्त आवेग के साथ कहा।

युवती हतबुद्धि-सी होकर शून्य नेत्रों से उसकी ओर देख सिर हिलाने लगी। नदी की बाढ़ की भांति युवक के मुंह से अनर्गल शब्द निकल चले—असम्बद्ध और एक-दूसरे पर गिरते हुए।

"तुमने मुझे ठग लिया ! जिस आशा-स्वप्न से प्रोत्साहित होकर मैंने 'ढाई दिन का झोंपड़ा' लिया था, उस स्वप्न को समेटकर तुम भाग आईं और उसे नदी में डुबा दिया, स्वयं डूबकर मर गईं और उस मृत स्वप्न का भूत बनकर इस ... में गा रही हो !"

युवती हंस पड़ी। उस हंसी में एक वेदनायुक्त झेंप के ... की भी थोड़ी-सी झलक थी। उसने कहा, "मैं नहीं

ा सकी, महोबे से ही लौट पड़ी। पर जाती कहां ? मेरा
अंतिम आश्रय-स्थान तो एक अज्ञात और उद्धत युवक ने ले
लिया था !"

युवक की चक्कर खाती हुई वृत्तियों को निष्कपट प्रेम
ने क्षण-भर में संभाल लिया। उसने गद्गद स्वर में कहा,
"अज्ञात और उद्धत युवक नहीं, जन्म-जन्मान्तर से विच्छिन्न-
हृदय उद्भ्रान्त कवि ने !" परन्तु उसके जन्मगत अहंकार ने
फिर अपना सिर ऊंचा किया। उस अहंकार में उत्फुल्लता
थी। उसने सगर्व कहा, "मुझे छोड़कर तुम अकेली जा कहां
सकती थीं ! मैंने 'ढाई दिन का झोंपड़ा' थोड़े ही खरीदा
था।"

युवती ने एक म्लान हंसी हंसकर युवक की ओर देखा।
शब्दों का कार्य समाप्त हो चुका था, अब और कुछ कहना
शेष नहीं रहा था। कमल में परिमल प्रवेश कर चुका था।
आध्यात्मिक पूर्णता के साथ ही बाह्य जगत् का अनुभव होने
लगा था। सहसा युवती बोल उठी, "अरे, आपके मस्तक पर
रक्त कैसा ?"

अकस्मात् युवक को चक्कर-सा आ गया। युवती उसका
सिर थामकर बैठ गई और बावड़ी के जल से मस्तक का घाव
धो, अपना आंचल फाड़ बावड़ी के ऊपर दौड़ आई। मजदूरों
ने रोटी बनाने को आग सुलगा रखी थी। युवती ने अपने
आंचल के टुकड़े को कण्डों की आग से जलाया और उसे
लाकर युवक के घाव पर रखा। ऊपर से आंचल ही से दूसरी
पट्टी फाड़कर बांध दिया। मजदूर दौड़ पड़े और सहारा देकर
युवक को ऊपर लाए। इसके पूर्व यही मजदूर आपस में
कानाफूसी कर रहे थे। उनमें से तो एक ने यहां तक कह

उस दिन को कोसता था, जब युवक के लगड़े घोड़े का
ाक बिना कुछ और समाचार बताए चुपके से झोंपड़े
ोड़ गया था। रसोइये को सन्देह हुआ कि शायद युवक
ि डाकुओं द्वारा मार डाला गया और यह घोड़ा भाग
। उसने मन ही मन सोचा कि यह पागल कवि खुद
ारा, पर द्रौपदीदेवी को यहां से भगा देने के बाद।
इया बेचारे निरीह घोड़े को भी दाना-चारा देने की
ाह नहीं करता था, क्योंकि वह समझता था कि उस
का लंगड़ा हो जाना ही सारे अनर्थों की जड़ थी। उसका
उचाट हो रहा था। झोंपड़े के कमरे उसे संकीर्ण-से
ूम होने लगे थे। उसका दम-सा घुटने लगता था और
में आता था कि वह भी इस सुनसान झोंपड़े को छोड़कर
ीं भाग जाए। निस्तब्धता जैसे किसीके विछोह में ज़ोर-
र से करुण क्रन्दन कर रही थी। उसने अकारण कहारिन
लड़कर उसे भी वहां से भगा दिया था। गांव के दो-चार
य व्यक्ति उससे श्रीमतीजी का समाचार पूछने आए थे।
भी इस भीमकाय सरलस्वभाव रसोइये का नये ढंग का
सा व्यवहार देख आश्चर्यपूर्वक चले गए।

शून्य नेत्रों से पथ पर दृष्टि जमाए उदासीन रसोइये
े सहसा कुछ मज़दूर सिर पर गट्ठर लादे आते दिखा
ए। उसने विरक्तिपूर्वक मन में कहा, 'यात्रियों के मारे नाक
ं दम है। इन्हें दुनिया में और कहीं मरने को जगह नहीं
मिलती!'

मज़दूरों के निकट आते ही उसने कर्कश स्वर में कह
"यह कोई धर्मशाला है! तुम लोगों को और कोई जग
ी मिली। किसी पेड़ की छाया में जाकर रात काटो।

भीतर से कुछ अस्फुट आवाज आई और रसोइये के द्रुतपद-शब्द के बाद बड़े जोर से किवाड़ खुल गए।

रसोइया पागल-सा होकर सिसकते हुए दोनों हाथों को आगे बढ़ाए झपाटे के साथ बढ़ा।

"श्रीमतीजी!" उसके मुह से निकला, और उसे ध्यान आया कि वह आलिंगन की नहीं, अभिवादन की वस्तु है; और युवती के पैरों पर जोर से गिर पड़ा।

युवक ने आगे बढ़कर उसको सादर उठाते हुए, दृढ़ आलिंगन में बांधकर कहा, "गजधर, अब हम यहां स्थायी रूप से रहेंगे। काल भी हमें यहां से विच्छिन्न नही कर सकेगा।"

रसोइये ने अपने को संभालते हुए एक वीर विजेता की भांति शासन-युक्त स्वर में मज़दूरों से कहा, "खड़े क्या देखते हो। सामान भीतर रखो।" और चकमक रगड़कर तुरन्त [illegible]।

[illegible] मे लेकर रसोइये ने युवती की ओर देखते [illegible] "आपका कमरा अभी तक साफ नही हुआ है, पहले [illegible] तो छत की कोठरी में ही महाकाव्य [illegible] युवक की ओर देखकर बोला, "आपका फिर लंगड़ाता हुआ आ गया है।"

[illegible] पड़े।

[illegible]निक का स्थायी [illegible] कवि-कुटीर में

अपने महाकाव्य की अजेय-शृंखला फिर जोड़ने के लिए नि
अध्ययनकक्ष में नियमित रूप से बैठने लगा । द्रौपदी को उसकि
की इस नियमितता पर कौतूहल हुआ और अवसर तो अ
उनके आदेशानुसार दूध, नाश्ता एवं भोजन कोठरी में ह
पहुँचाने लगा ।

निरन्तर कितने ही दिनों तक यह क्रम जारी रहा; किन्
युवती ने लक्ष्य किया कि कविवर के मुखमण्डल पर वह
उल्लास नहीं नाच रहा है, जो कवि भाव की पकड़ और
उनके प्रकाशन के समय व्यक्त किया करते हैं। पता नहीं
क्यों, कवि अब किसी ऐसे अवगुण्ठन में फँस गया है जिससे
उसका छुटकारा होता नहीं दीखता और न वह अपनी भाव-
धारा को आगे बढ़ाने में समर्थ होता दिखाई देता है। पाचक
अवसर देखता—कभी-कभी तो सवेरे का रखा दूध का गिलास
ठण्डा पड़ जाता और कविवर दोपहर को भोजन के समय
ही उसपर दृष्टि डाल पाते ।

द्रौपदी ने कई दिनों तक कविवर की इस उलझन का
पर्यवेक्षण करने के बाद एक दिन पूछ लिया, "मालती एक बात
कहूँ ?"

"स्पष्ट बात यह है कि यह सूत्र पिरोना आपके हाथ में है—मैं जब आपको उपस्थित पाता हूं तो मेरी प्रेरणा पूर्णतः स्फूर्त हो उठती है। यदि आप···"

"आपके काव्य-लेखन के समय आपके पास बैठी रहूं? यही कहने जा रहे हैं न आप?"

"जी हां, प्रारम्भ में 'ढाई दिन के झोंपड़े' में आपको पाकर मेरी भावधारा जिस तरह तरंगित हो उठी थी उससे मुझे ऐसा लगा था कि मेरी अधूरी जीवन-साधना अब पूरी होने जा रही है। इसीलिए जब आप मुझसे, या मेरे व्यवहार से रुष्ट होकर तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान कर गईं तो मैं बेचैन हो गया। मुझे ऐसा लगा कि काव्य-लेखन की समस्या सुलझते-सुलझते रह गई। आपको पाकर फिर आशा बंधी और जीवन का विशृंखलित क्रम फिर व्यवस्थित हो गया। परन्तु अब देखता हूं कि शृंखला जम नहीं पा रही है। इसीलिए मैं आपसे यह अनुरोध करना चाहता था, पर कुछ सोच-समझकर संकोच में पड़ जाता था; परन्तु आज आपने स्वयं पूछने की अनुकम्पा की तो सच-सच कह दिया। आप मेरे लेखन के समय प्रातः-सायं मेरे पास बैठ जाया करें तो मेरे महाकाव्य में नई जान आ सकती है और मैं उसमें सभी रसों का आनुपातिक संचार इतनी खूबी से कर सकता हूं कि इसे पढ़ने और सुननेवाला आत्मविभोर हो जा सकता है।"

"परन्तु मैं यह नहीं समझ सकी कि मेरे बैठ जाने से सभी रसों का संचार करने में आपको कैसे और क्या सहायता मिल सकती है।"

"आप शायद इसे समझ भी नहीं सकेंगी, पर आपकी उपस्थिति इसमें पूर्ण योग देगी। वचन दीजिए कि आप

"स्पष्ट बात यह है कि यह सूत्र पिरोना आपके हाथ में है— मैं जब आपको उपस्थित पाता हूं तो मेरी प्रेरणा पूर्णतः स्फूर्त हो उठती है। यदि आप…"

"आपके काव्य-लेखन के समय आपके पास बैठी रहूं ? यही कहने जा रहे हैं न आप ?"

"जी हां, प्रारम्भ में 'ढाई दिन के झोंपड़े' में आपको पाकर मेरी भावधारा जिस तरह तरंगित हो उठी थी उससे मुझे ऐसा लगा था कि मेरी अधूरी जीवन-साधना अब पूरी होने जा रही है। इसीलिए जब आप मुझसे, या मेरे व्यवहार से रुष्ट होकर तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान कर गईं तो मैं बेचैन हो गया। मुझे ऐसा लगा कि काव्य-लेखन की समस्या सुलझते-सुलझते रह गई। आपको पाकर फिर आशा बंधी और जीवन का विशृंखलित क्रम फिर व्यवस्थित हो गया। परन्तु अब देखता हूं कि शृंखला जम नहीं पा रही है। इसीलिए मैं आपसे यह अनुरोध करना चाहता था, पर कुछ सोच-समझकर संकोच में पड़ जाता था; परन्तु आज आपने स्वयं पूछने की अनुकम्पा की तो सच-सच कह दिया। आप मेरे लेखन के समय प्रातः-सायं मेरे पास बैठ जाया करें तो मेरे महाकाव्य में नई जान आ सकती है और मैं उसमें सभी रसों का आनुपातिक संचार इतनी खूबी से कर सकता हूं कि इसे पढ़ने और सुननेवाला आत्मविभोर हो जा सकता है।"

"परन्तु मैं यह नहीं समझ सकी कि मेरे बैठ जाने से सभी रसों का संचार करने में आपको कैसे और क्या सहायता मिल सकती है।"

"आप शायद इसे समझ भी नहीं सकेंगी, पर आपकी

बैठेंगी ?"

"वचन क्या देना है ! नियमित रूप में बैठना तो एक उबानेवाला काम होगा, पर दो-चार दिन बैठकर देखने में कोई हानि भी नहीं है।"

"आप फिर गलत समझ रही हैं। आप यहां बुत बनकर नहीं बैठी रहेंगी। मैं अपनी रचना तैयार कर उसे अंशतः आपको सुनाकर आपसे समर्थन प्राप्त करता चलूंगा। आप एक बार मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर बैठने लगेंगी तो आप खुद उस रसधार में डूबने-तैरने लगेंगी।"

इस वार्तालाप के दूसरे ही दिन से युवती नित्य प्रातः स्नान कर, कपड़े बदल कवि के साथ ही कुटीर में आ बैठने लगी। गजधर को अब दोनों का दूध-नाश्ता और भोजन साथ परोसना पड़ता था। उसकी समझ में यह नहीं आया कि इससे काव्य-रचना में क्या मदद मिल सकती होगी, पर वह तो पाचक ठहरा। उसे इस बात से क्या मतलब !

कविवर जगनिक का काव्य-प्रवाह फिर चल पड़ा। उसकी गति ऐसी निष्कण्टक और तीव्रगामी हो गई कि युवती को ही नहीं, स्वयं कविवर को आश्चर्य होने लगा कि अवरुद्ध भाव-धारा का द्वार किस प्रकार अनायास खुल गया और उसका प्रवाह फिर वेगवाही हो चला। वह एक प्रसंग-खण्ड लिखकर उसे सरोद पर गाकर सुनाता और युवती उसका आनन्द लेते हुए झूम उठती। वीरता का प्रसंग वह अपनी मांसपेशियों के तनाव द्वारा और तलवार की मूठ पकड़कर उसे फिराकर व्यक्त करता; शृंगार का वर्णन वह युवती के अंग-प्रत्यंग पर दृष्टिपात करते हुए करता। करुणा का वर्णन वह षड्ज-गांधार की मध्यम गति से इस प्रकार करता जैसे कोई सचमुच

रो रहा हो। कभी-कभी तो करुणधार में वहकर कवि सचमुच आंसू बहाने लगता—उसकी हिचकियां बंध जातीं। और यहां तक कि इस स्थिति से त्राण पाने में उसे समय लग जाता। युवती पहले तो ऐसे प्रसगों से अधिक प्रभावित नहीं होती थी; पर धीरे-धीरे कथा-प्रसंग को समझने और कवि की मूल भावना को ग्रहण करने के साथ-साथ वह भी भावधारा में वहने लगी।

कवि ने युवती की इस मनःस्थिति से लाभ न उठाया हो, यह बात नही थी। उसने वीररस में दूर से, शृंगार मे सान्निध्य से और करुणा में नैकट्य से युवती पर प्रयोग-सा करना शुरू किया। उसे प्रभावित करने के लिए वह सरोद और कण्ठ-स्वर को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न करने लगा।

गजधर जब दूध-नाश्ता और भोजन लेकर आता तो वह इन प्रसंगों को सुनकर प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता था। कालिंजर की लड़ाई का प्रसंग सुनकर उसकी भुजाएं फड़क उठी जबकि ईंदल-हरण का प्रसंग सुनकर वह सचमुच रो उठा। कविवर का खण्डगान सुनने के लिए वह स्तब्ध खड़ा रहता। ऐसा प्रतीत हुआ कि उसे भी काव्य-रस में पूरा आनन्द आने लगा है।

कथा-प्रवाह चालू होने पर उसमें रुकावट नही आती थी। केवल कभी-कभी कथा लिखने का भाव आने में देरी लग जाती थी। द्रौपदी की उपस्थिति से उस विलम्ब में कमी होने लगी और प्रवाह खुल जाने पर उसकी प्रभाव-चेष्टा से कवि को और भी वेग से कथा चलाने का प्रोत्साहन मिलने लगा। किन्तु उस प्रभाव-चेष्टा का प्रकाशन युवती बड़े संयत रूप में

करती थी। फिर भी जगनिक की पर्यवेक्षण शक्ति उसमें से शक्ति का पर्याप्त भण्डार निकाल लेती थी।

एक दिन जब इस प्रकार कथा-प्रवाह पूरे वेग पर चल रहा था और कविवर एक खण्ड तैयार कर उसकी आवृत्ति युवती को सुना रहे थे तो गजधर दोपहर का भोजन लेकर आ पहुंचा। उसने देखा कि कविवर के कण्ठ में शृंगार और प्रेम का फव्वारा छूट रहा है और युवती उसके प्रभाव में आकर पूर्णतः रस-रंजित हो रही है। कोई अन्य रस होता तो गजधर उससे प्रभावित हुए बिना न रहता, पर इस प्रसंग पर कवि की व्यंजक शब्दावली से युवती का स्त्री-हृदय जिस प्रकार द्रवित और मंथित हो रहा था उससे उसे कवि के प्रति ईर्ष्या हुई। उसने भोजन-सामग्री वहीं रख दी और सदा की भांति वहां न रुक-कर नीचे चला गया।

कविवर और युवती दोनों ने यह बात लक्ष्य की; पर युवती ने तो यही समझा कि किसी और कार्यवश वह नीचे चला गया होगा। हां, जगनिक ने उसकी वह भावना भांप ली; और उसमें ऐसे क्रोध का वेग दौड़ गया कि वह कथा रोककर युवती के साथ इस विश्लेषण में लग गया कि भला गजधर ने ऐसा अविनयपूर्ण कार्य क्यों किया। यह तो अनौचित्य और धृष्टता की पराकाष्ठा है। उसे ऐसा करने का अधिकार नहीं था। कुछ भी हो, आखिर वह एक नौकर है! उसे जो आदेश है उसीके अनुसार आचरण करना चाहिए था।

युवती ने कहा, "शायद आप भूलते हों! वह किसी कार्य-वश भी तो नीचे जा सकता है।"

जगनिक ने कुछ रुककर कहा, "यदि ऐसा भी हो, तो भी

उसे वैसा भाव प्रकट करके नीचे जाना था।"

गजधर बुलाया गया। उसके आने पर कविवर ने तीक्ष्ण स्वर में पूछा, "पाचक, तुम आज भोजन रखकर नीचे क्यों चले गए? क्या तुम्हारे यहां रुकने में कभी कोई आपत्ति की गई थी?"

"नहीं तो। मैं तो यों ही चला गया। कुछ कथा-प्रसंग भी मेरी समझ में नहीं आ रहा था, इसलिए व्यर्थ रुके रहने से कोई लाभ नहीं था।"

"कथा-प्रसंग कैसा था? तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आ रहा था? तुम चालू 'रेख्ता' तो अच्छी तरह समझते हो?"

"समझता हूं, पर और दिनों जब मैं भोजन लेकर आता था तो कथा में मुझे अनायास रस आने लगता था; आज की कथा में मुझे अपने लिए कोई आकर्षण नहीं नजर आया।"

"इसका कारण क्या हो सकता है पाचकराज?"

"यही कि उसके अन्दर जिस प्रकार के भाव व्यक्त हो रहे थे उनमें आनन्द लेने की अब मेरी अवस्था नहीं रही—खासकर जिन्हें मैं स्वामी और स्वामिनी मान चुका हूं उन्हें शृंगाररस के ऐसे प्रवाह में डूबते देखना मेरी स्थिति और अवस्था के अनुकूल नहीं है।"

युवती ने उसकी बात का औचित्य सिद्ध करते हुए कहा, "सच तो है, आखिर वह पाचक ही तो ठहरा! वह हमारी रस-क्रीड़ा का आनन्द कैसे ले। वह है भी तो हमारे बुजुर्गों की अवस्था का। उसका रस-व्यतिरेक स्वाभाविक है।"

कविवर का युवती की इस वकालत से समाधान तो नहीं

आया करे जब काव्य-गायन और सरोद-वादन न हो रहा हो।

कथा-प्रवाह आगे बढ़ने लगा, पर उसकी प्रक्रिया में अब एक परिवर्तन आ गया। पहले जहाँ कथा-प्रवाह की प्रेरणा प्रयत्नपूर्वक आती थी वहाँ अब वह अनायास आने लगी और कभी-कभी बीच में अनायास ही बन्द होने लगी। युवती ने इस परिवर्तन को लक्ष्य किया और कवि से इसका कारण पूछा। जगनिक ने इसके कारण का विश्लेषण करने में असमर्थ होकर स्वयं युवती से ही कहा कि यदि वह कुछ समझती हो तो उसे समझाए। ऐसा कहते हुए उसकी अहम्मन्यता को धक्का अवश्य लगा, पर कारण का समझ लेना भी आवश्यक था। दूसरा कारण यह भी था कि अब कवि को युवती की समझ का लोहा मानना पड़ गया था। कई अवसरों पर उसके सुझाव का काव्यात्मक मूल्य वह समझ और मान चुका था। उसके शरीर के ही नहीं, उसकी मानसिक शक्ति के भी अब वह वशवर्ती हो गया था। प्रथम मिलन में उसमें उसके प्रति जो कृत्रिमता और अनादर की भावना जगी थी वह अब सर्वथा विलुप्त हो चुकी थी। वह शारीरिक आकर्षण की तरह ही उसके मानसिक आकर्षण के भी वशीभूत हो गया था, इसलिए उसकी बात का खण्डन उसने नहीं किया। युवती ने भी इस बात को समझ लिया कि अब कवि जगनिक उसके रूप और गुण के जादू का चमत्कार देख चुका है, इसलिए उसने उसे कुछ अधिक [illegible] और लिखाने के लिए एक दिन बो-ही कह दिया : 'आपका महाकाव्य वीररस प्रधान होने के कारण [illegible] में ही प्रवाह पाएगा। इसमें यह [illegible] नहीं है कि [illegible] के [illegible] इसकी अधिक [illegible] हुए हैं।

"क्यों, तुमने यह बात कैसे कह दी ! क्या मेरे काव्य में शृंगार, हास्य, करुणा और शान्ति का मिश्रण नहीं है ? क्या किसी महाकाव्य में किसी एक रस की प्रधानता नहीं होती ? वैसे तो मैं दावा कर सकता हूं कि मेरे महाकाव्य मे सभी रस है—पर वीररस तो उसका प्रधान गुण है ही, और मैं उसे लिख भी उसी दृष्टि से रहा हूं । मैं देश के नवयुवकों को वीररस से ओतप्रोत कर देना चाहता हूं, इसीलिए क्षत्रियों में किशोरावस्था से ही लड़ने-मरने की प्रवृत्ति भरने के लिए मैंने—

"बरस अठारह क्षत्रिय जीवे
आगे जीवन को धिक्कार !"

लिखा है । जब तक देश में यह मनोवृत्ति न जाग्रत् होगी, हमारे देश का राजपूत समाज विदेशियों-म्लेच्छो से दबकर भीरु बना रहेगा । मैं देखता हू देश में एक वर्ग कायरता की ओर बढ़ता जा रहा है, जिससे वह सघर्षशील तत्त्व को निष्क्रिय और नपुसक बनाता जा रहा है । मैं यह स्थिति सहन नहीं कर सकता । मैंने अपनी आंखों से देखा है, इस देश में विदेशियों के आगमन और आक्रमण के कारण वीरता विलुप्त होती जा रही है । मेरा महाकाव्य इस जड़ता को नष्ट कर अभिनव वीररस का संचार करेगा । दूसरी बात मैं यह देख रहा हूं कि हमारे ही भाई स्वार्थवश इन नवागन्तुक यवनों-मलेच्छों का हौसला बढ़ाकर अपने ही शासन और देश को अपदस्थ करने मे मदद दे रहे हैं । इस प्रकार की गर्हित प्रकृति की निन्दा होनी चाहिए । मेरा महाकाव्य ऐसे विभीषणों की खबर तो लेगा ही, साथ ही इधर की उधर लगाने-

युवती ने देखा कविवर जगनिक इस समय पूरे जोश से अपना भाव प्रकाशित कर रहे हैं। सहसा गजधर ने ऊपर आकर यह बात सुन ली तो वह हाथ जोड़कर बोला, "कवि-जी महाराज, यह बात तो मैं बहुत दिनों से देख रहा हूं कि हमारे राजपूत भाई ही दूसरे राजपूत शासक को अपदस्थ करने और देश को रसातल पहुंचाने का काम कर रहे हैं। जयचन्द का उदाहरण तो ताजा है। और अब महोबा और कालिंजर भी ऐसी प्रवृत्तियों के केन्द्र बने हुए हैं। आपसी चढ़ावढ़ी में अपनी नाक काटकर भी दूसरे का सगुन बिगाड़ने के लिए लोग तुले हुए हैं!"

"ठीक कहते हो पाचकराज! मुझे अपने महाकाव्य में यही चित्र तो लोक-समाज को दिखाना है। पारस्परिक फूट के कारण ही भारत यवनकाल में अपदस्थ हुआ—जबकि यूनानियों ने गुप्त-साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र तक धावा बोलकर इस देश को रौंद डाला था—और अब म्लेच्छों को राह देकर हमारे भाई अपने ही सम्राट की नैया डुबाने को तैयार हैं। इस चित्र को दिखाकर, आर्यजाति की आंख खोलने की दृष्टि से ही मेरा महाकाव्य लिखा जा रहा है।"

"परन्तु," द्रौपदी ने पूछा, "इस महाकाव्य को पढ़कर क्या इस देश के मूर्खों का राष्ट्राभिमान जाग्रत् होगा?"

"अवश्य जाग्रत् होगा! इसीलिए तो भगवान ने मुझे यह प्रेरणा दी है, और दूर से यात्रा करते हुए तुम्हारे निकट आ पहुंचा हूं। भगवान ने तुम्हें रूप ही नहीं दिया, समझ भी दी है। तुम अगर इसी भांति प्रेरणा और प्रोत्साहन देती रहीं तो मुझे यह महाकाव्य पूरा करने में सफलता मिलेगी। मैं आर्यजाति की भूतकालीन गौरवगाथा सुनाकर उसमें ऐसे

करते-करते थक जाता था और वह क्लांत हो धीरे-धीरे चलने लगता था, तो मैं तब तक के रचित महाकाव्य के पद गुनगुनाया करता था। इससे घोड़े को अद्भुत स्फूर्ति मिलती थी और वह अपने-आप अधिक वेग से चलने लगता था। उसका भी इस काम में सहयोग है। इस वट-वृक्ष का भी सहयोग है, जिसकी शीतल छाया में आश्रय पाकर मैं कुछ गाने का उपक्रम करने पर आपके दर्शन कर सका था। 'ढाई दिन के झोंपड़े' का इस महाकाव्य पर महान ऋण होगा। आपके जो पुरवासी ज्ञात या अज्ञात रूप में हमारे इस कार्य में सहायक हो रहे हैं, वे सभी इस महाकाव्य का जन्म देने में हम दोनों के सहायक हो रहे हैं। रहीं आप, सो अब तो आप मुझे और मेरे काव्य को अपना ही चुकी हैं।"

द्रौपदी कविवर जगनिक की इन बातों से गद्गद हो उठी। आज उसने देखा कि उस कठोरहृदय प्रतीत होनेवाले युवक का हृदय कितना कोमल है! उसका मस्तक उसके सामने झुक गया, और उसके मुंह से अकस्मात् यह निकल पड़ा, "मैं आपके इस महाकाव्य के जन्म के लिए अपना सम्पूर्ण सहयोग आपको अर्पित करूंगी।"

"धन्य हो तुम!" कविवर ने कहा, "मैं यही चाहता था। किसी भी कार्य में जब तक सम्पूर्ण और हार्दिक सहयोग न प्राप्त हो तब तक उसकी सफलता सुनिश्चित नहीं होती। आज मैं कितना प्रसन्न हूं, आपके इस समर्पण से किस प्रकार दसों दिशाएं मेरे और मेरे इस महाकाव्य के अनुकूल हो गई हैं, यह मैं लक्ष्य कर रहा हूं। मेरे हृदय में काव्य-सृष्टि के लिए नई-नई कल्पना-कोंपलें फूट रही हैं। मैं अवश्य ही अपनी

चिरसंचित अभिलाषा की पूर्ति कर सकूंगा।"

जगनिक का यह वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि गजधर भोजन के थाल लाने के पहले पानी के पात्र लेकर आ पहुंचा और कक्ष में प्रवेश करते ही हंसकर बोल उठा, "आज क्या बात है, कविजी बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं, मुझे कुछ पुरस्कार मिलने का प्रसंग आ रहा है क्या?"

जगनिक के पहले ही युवती बोल पड़ी, "हां गजधर, क[illegible] कविजी का हृदय-कपाट खुल गया है, और उसके अन्दर म[illegible] भाग मैं फिसल पड़ी हूं। मैंने इन्हें इनके महान कार्य—का[illegible] रचना में तन, मन और धन से पूर्ण सहयोग देने का निश[illegible] कर लिया है।"

"बड़ी खुशी की बात है।" गजधर बोला, "मेरे पास [illegible] तन ही है, मन इनके काम का नहीं है और धन तो इन[illegible] लिए तुच्छ ही है—फिर भी जो कुछ भी है, वह इनके चरण[illegible] में समर्पित है। वैसे तो आपके समर्पण में मेरा भी समर्पण आ जाता है, पर आपका समर्पण और तरह का है—आप स्त्री ठहरी, मेरा समर्पण तो रूखे और भोंडे ढंग का है, पर है मजबूत और ठोस!"

जगनिक का हृदय अभिभूत हो उठा। उसने झट उठकर गजधर के विशाल शरीर का आलिंगन करते हुए कहा, "तुम भी धन्य हो गजधर! तुमसे जो आश्वासन प्राप्त करने की कल्पना मैं दूर भविष्य में कर रहा था, वह सहसा प्राप्त हो गया। इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है!"

ये बातें चल ही रही थीं कि नीचे घोड़ा जोर से हिन-हिनाया। जैसे वह भी गजधर के सहयोग का समर्थन और अपने समर्पण का प्रस्ताव कर रहा हो।

"मेरा प्यारा घोड़ा भी सहयोग का समर्थन कर रहा है! गजधर, देख तो आओ, क्या बात है।"

गजधर नीचे उतरा तो कविवर ने पुलकित होकर आज प्रथम बार युवती का आलिंगन किया—उस प्रकार नहीं, जैसे कोई कामुक विलासिता की तरंग में आकर किसी सुन्दरी रमणी का करता है, वरन् उस प्रकार जैसे कोई मगन हो अपनी भाव-विह्वलता किसी भी उपस्थित प्रिय पात्र पर प्रकट करता है।

युवती ने उसके इस प्रिय और प्रगाढ़ आलिंगन का तनिक भी विरोध नहीं किया।

"मैंने आज तुम्हें पाकर अपने जीवन को धन्य माना।" कविवर ने कहा।

थोड़ी देर में गजधर ने लौटकर सूचना दी, "कुछ नहीं, श्रीमान! अपने घोड़े के निकट पास के किसी गाँव की एक घोड़ी आकर खड़ी है। उसकी पीठ पर ज़ीन नहीं है, न कोई सवार। ऐसे ही न जाने कहाँ से घूमती-फिरती आकर उसके निकट खड़ी हो गई। इस संयोग से प्रसन्न होकर वह हिनहिना उठा है।"

तेरह

नई प्रेरणा और नई तैयारी के साथ कविवर जगनिक का काव्य-रथ तेज़ी से चल पड़ा। प्रतिदिन नियत समय पर कुछ देर तो अपने कक्ष में ही उनकी काव्य-रचना चलती, कुछ समय वट-वृक्ष के नीचे और कुछ समय—विशेषकर सान्ध्यवेला में—नदी के किनारे। कवि ने अपनी पूर्ववर्ती कथावस्तु को

ढ़ाने लगा। फिर किस प्रकार पृथ्वीराज ने जयचन्द की पुत्री योगिता का हरण किया और फिर किस प्रकार राठौरों और चौहानों में स्थायी विद्रोह और युद्ध की जड़ जमी। यह व वर्णन कवि ने खण्डशः और बड़े मार्मिक ढंग से किया।

पृथ्वीराज और जयचन्द के विरोध और संघर्ष से ही इस प्रकार कन्नौज के उत्तराधिकारी शासक लाखन ने महोबा बनाफरों से सांठ-गांठ कर आल्हा-ऊदल को अपने पक्ष में किया और अन्त में सिरसा के मलखान तथा मियां सय्यद की मदद से उन्होंने दिल्ली से लोहा लेने का साहस किया। इस सिलसिले में बनाफर राय ब्रह्म के सम्राट-कन्या बेला से सम्बन्ध जोड़कर धोखे से ब्याह रचाने की कथा भी उसमें सम्मिलित की गई। इस प्रसंग में अधिक ज़ोर डालने के लिए ही कवि ने चन्दनबगिया की लड़ाई, बेला का गौना, इंदल-हरण आदि अनेक काल्पनिक प्रसंगों का ताना-बाना बुन डाला।

राजपूत-काल के इस प्रसंग—पृथ्वीराज और जयचन्द के मनमुटाव के सिलसिले में भारत के सभी राजपूतों में किस प्रकार गुटबन्दी हुई, ऊंच-नीच की भेद-भावमूलक दुर्भावनाएं पनपी, उसका विस्तृत वर्णन करके कवि ने अपने काव्य के श्रोताओं को और उनके द्वारा सारे देश को यह सन्देश दे डाला कि इस भेद-भाव और फूट की भावनाओं से ही देश का पतन हुआ और यहां विधर्मियों और विदेशियों ने अपने पैर जमाए। कवि ने अपने काव्य द्वारा यह सन्देश दिया कि सबको सावधान होकर देश की एकता और रक्षा के लिए एक होकर एक सूत्र में बंधकर अपनी आहुति और सर्वस्वार्पण के लिए तैयार रहना चाहिए।

जगनिक अपने इस कथा-वर्णन को केवल ऐतिहासिक

पंवारे के रूप में नहीं लिख रहे थे—वे साथ ही साथ वर्तम
समाज को चुनौती भी देते जा रहे थे कि वह या तो नि
त्यागकर अपने कर्तव्य पर आरूढ़ हो जाए, नहीं तो उसक
विनाश निश्चित है। उनके काव्य में पर्याप्त प्रोत्साहन औ
उद्बोधन था, इसीलिए उसमें आबाल वृद्ध, वनिता सभीके
लिए श्रवण-मनन की पर्याप्त सामग्री थी। उन्होंने देश में
नये राजनीतिक घटनाचक्रों के कुप्रभाव को लक्ष्य करते हुए
अत्यन्त ओजस्विनी और मार्मिक भाषा में जनसाधारण और
सूर-सामन्तों तक सबको ऐसी बातें सुनाईं जिससे उन्हें प्राणो
का मोह छोड़कर देश के लिए उचित और सद्धर्म के लि
मर मिटने की प्रबल आकांक्षा प्राप्त हुई।

कविवर जगनिक की कविता में हर प्रसंग के साथ य
बोध-पाठ अवश्य होता है कि 'हे भारतवासियो! तुम आपस में
लड़कर अपनी शक्ति न खोओ, आत्मघातपूर्ण विद्रोह से बा
आओ और अपनी तलवार के जौहर तब दिखाओ जब तुम
पर कोई बाहरी, विदेशी और विधर्मी शक्ति आक्रमण कर
तुम्हारे शौर्य, सम्पन्नता और संस्कृति को चुनौती दे।' जगनि
की वाणी में करुणापूर्ण विलाप और स्फूर्तिदायक वीररस का
मेल इस सुन्दरता के साथ हुआ कि सुननेवाले विवश हो जहां
एक ओर द्रवित हो उठते थे, वहां दूसरी ओर ओज से
प्रफुल्लित हो उठते थे।

चौदह

जिस दिन कविवर ने अपना यह वीररस-प्रधान महा-
काव्य पूरा किया उस दिन उन्होंने जैसे एक बड़े यज्ञ का

कार्यक्रम सम्पन्न कर डाला। आज उनके उल्लास की सीमा नहीं थी। संयोगवश वह वसन्तऋतु थी और चैत्र-रामनवमी का महापर्व। मनुष्यों में ही नहीं, पशु-पक्षियों, वृक्षों, लता-गुल्मों सबपर यौवन की आभा छिटक रही थी। सुरभित मन्द समीर से सबके मन प्रफुल्लित हो रहे थे।

गजधर ने देखा कि आज उसके स्वामी आनन्दविभोर होकर इधर-उधर डोल रहे हैं। ऐसे ही समय पर उसने पास जाकर विनम्र भाव से पूछा, "आज बहुत प्रसन्न हैं सरकार! क्या बात है?"

"अरे गजधर, आज नहीं प्रसन्न होऊंगा तो कब होऊंगा! आज मेरे महाकाव्य का आल्हखण्ड समाप्त हो गया। कल इसी उपलक्ष्य में यहां के पुरवासियों को आमन्त्रित करना है, जिससे सबको विधिवत् भोजन कराकर पान-सुपारी से उनका सत्कार किया जाए और विस्तृत आल्हखण्ड से चुनकर कुछ छोटे-छोटे प्रसग गाकर सुनाए जाए। इस गाव में ढोलक-मंजीरेवाले तो मिल ही जाएंगे। सरोद मैं सभालूगा। रहा तलवार के पैतरे का अभिनय, सो तो तुम कर ही लोगे।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है सरकार! इससे गाव मे नाम हो जाएगा और लोग जान जाएगे कि आप यहा कैसा बड़ा काम करने मे लगे थे।"

योजना बन गई। द्रौपदी ने भी उसपर स्वीकृति की मुहर लगा दी। दूसरे दिन सवेरे से ही घृत की सुगन्ध से विस्तृत गांव में विज्ञापन हो गया कि आज महाकवि की ओर से 'ढाई दिन के झोंपड़े' मे सकल पुरवासियों का भोज है, जिसमे महाकवि अपनी रचना का गायन भी करेंगे।

गाव के नाई ने पूरे विस्तार के साथ, गाव के बालकों से

लेकर वृद्ध, वनिता तक सबको आमंत्रित कर दिया और दोपहर होते-होते 'ढाई दिन के झोंपड़े' में ग्रामवासियों की उपस्थिति से बड़ी चहल-पहल हो गई। पुरुषों में सबको यथास्थान बैठाने का काम गजधर ने सम्भाला और महिलाओं को पृथक् बैठाने की व्यवस्था द्रौपदी ने की। वट-वृक्ष के विशाल प्राकृतिक वितान के नीचे जाजिम-फर्श बिछाया गया और कविवर के लिए गद्दी-मसनद लगाकर उनके साज और साथियों-सहित बैठने की व्यवस्था कर दी गई।

तीसरे पहर तक सब भोजन के बाद यथास्थान बैठ— इस-पान के सम्मान से मुक्त हुए। उसके पश्चात् कवि अपने आसन पर आए और पहले एक संक्षिप्त से भाषण पुरवासियों का अभिवादन करते हुए बोले, "महानुभाव अन्न-जल बहुत प्रबल है। मैंने कान्यकुब्ज में जिस महाकाव की स्थापना की थी उसके लिखने के लिए उपयुक्त प्रेरणा क खोज में भारत के अनेक भागों में भटकता फिरा। अन्त मे आपके गांव में आकर मैंने इस 'ढाई दिन के झोंपड़े' और इसकी स्वामिनी द्रौपदीदेवी और सेवक गजधर से प्रेरणा पाकर आल्हखण्ड सम्पन्न किया। इस दृष्टि से यह ग्राम मेरे जीवन में सर्वाधिक महत्त्व रखता है। इस भवन का नाम भले ही 'ढाई दिन का झोंपड़ा' है, पर इसमें कोई अधूरापन अब नहीं रहा है; क्योंकि इसने तो मेरी अधूरी चीज़ को पूरी करा देने का श्रेय प्राप्त कर लिया है।

"मैंने जो रचना की है उसके एक अल्पांश का परिचय मैं अपने सहयोगियों के सहारे आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूं।"

यह कह कवि जगनिक अपना सरोद संभालकर बैठ गए।

साथ ही ढोलक-मंजीरे की ताल और गजधर के खड्ग-पैंतरे को देखने-सुनने के लिए ग्रामवासियों के सिवा पार्श्ववर्ती क्षेत्रों के लोग आ जमा हुए। भीड़ निरन्तर बढ़ती गई। कवि ने पहले पार्श्ववर्ती महोबे की लड़ाई का वर्णन सरोद पर पद्य-बद्ध रूप में गाया। घटना आंचलिक थी, इस कारण कितने ही लोगों को इस लड़ाई की किम्वदन्तियां पहले ही से याद थीं, और इसीलिए उसे पद्यबद्ध रूप में सुनकर इसमें उनकी रुचि और भी बढ़ गई। कवि ने मंगलाचरण के बाद तुरन्त ही महोबे की लड़ाई का प्रसंग उपस्थित करते हुए गाया :

मातु सारदा सु प्रथमहिं सुमिरौं
जो जिह्वा को देयँ वरदान।
सुमिरि भवानी मेहरवानी
मनियादेव महोवे बयार।
ठैयां-भुइयां तोहिका सुमिरौं
हमरा पथ देहु पुरवाय।
बड़े लड़ैया महुबे वाले
इनको मार सही ना जाय।
बरस अठारह छत्रिय जीवै
आगे जीवन को धिक्कार।
का छवि बरनौं बघ-ऊदन की
जे आल्ह के लहुरवा भाय।
केहु गर्वी का गर्व न राख्यो
साका रही देस मां छाय॥

अभी लड़ाई भइ मड़ब की
ओदा कहै मान का ना।

जेहि पांत्री माँ ऊदल घुसिगँ
केउ मारे क परैया नायँ।
एक के मारे ते दस गिर जायँ
झपटे नीस परैं भहराय।
खट-खट-खट-खट तेगा बोलै
छपक-छपक बोलैं तरवार,
जेहि घोड़े को गोला लागैं
ठटरी आसमान मंडराय।
जेहि हाथी को गोला लागे
मानौं चोर सेंध कर जाय।
घमासान भइ दुइनो दल माँ
नदिया बही रकत की धार॥
छुरी-कटारी मछरी ह्वै गई
कछुवा भये ढाल-तरवार॥

जब जगनिक ने महोबे की लड़ाई का वर्णन आगे बढ़
और कविवर की वीररसपूर्ण वाणी सरोद की झंकार श्र
ढोलक-मंजीरे की गुंजार के साथ वट-वृक्ष के वितान में गू
उठी तो लोग मस्त होकर झूमने लगे। गजधर इस ताल प
तलवार का पैंतरा घुमाते हुए इस तरह आगे बढ़ता और पी
हटता था जैसे वह सचमुच शत्रु से सामना कर रहा हो।

सभी श्रोता मानो उस वीररस के प्रवाह में झूमते हुए
बह चले—यहां तक कि कविवर का घोड़ा भी यह सब देख-
सुनकर बार-बार हिनहिनाता रहा। आसपास के सभी जीव-
धारी मनुष्य, पशु-पक्षी, यहां तक कि वृक्ष तथा लता-गुल्म
भी झूम उठे।

घण्टों तक वीरगाथा के इस प्रबल प्रवाह में मानो सारी

सृष्टि ही प्रवाहित हो चली, किसीको अपनी सुधि न रही—सभी इस युद्ध के जैसे निरन्तर रूप मे चलते रहने की आकांक्षा से प्रेरित हो रहे थे ; इसलिए जब जगनिक ने एक करुण पंवारे के साथ उसकी परिसमाप्ति की तो लोग इस प्रकार उभक उठे जैसे तीव्रगामी वाहन के सहसा रुक जाने पर उसके सवार ठिठक जाते हैं।

कविवर ने सहसा गायन रोककर जैसे सभीको सोते से जगा दिया और धीमे स्वर मे समस्त पुरवासियों को पुनः सम्बोधित कर कहा :

"'ढाई दिन के झोंपड़े' के समस्त पुरवासियो, मैं आप सबका परम कृतज्ञ हूं जो आज आप मेरे आमंत्रण पर यहां पधारे और मेरी इस तुच्छ रचना को सुनकर आदर दिया। मैं श्रीमती द्रौपदीदेवी और वीरवर गजधर का आभारी हूं, जिनके सहयोग के बिना यह काव्य-प्रसग अधूरा ही रह जाता। मेरा विश्वास है कि ग्रामगीत होने के कारण कुछ ही समय में मेरी यह रचना सभी ग्राम्यक्षेत्रो मे अपनी-अपनी बोली की छाप के साथ प्रचलित हो जाएगी और दीर्घकाल तक ग्राम्य-क्षेत्रों के अकलुषित हृदयो मे वीररस का सचार करती रहेगी। मुझे पूरी आशा है कि वीररस का यह कडखा भारत के ग्राम्य-निवासियों में सुदृढ वीरता का सचार करता रहेगा, और इस देश को विधर्मियों और विदेशियों द्वारा रौंदे जाने से बचाएगा।"

कहा जाता है कि दूसरे दिन कविवर जगनिक बहुत तड़के 'ढाई दिन के झोंपड़े' से अपने घोड़े और सरोद-सहित कूच कर गए थे। सवेरे उठकर देखा गया तो कवि-कुटीर

आल्हखण्ड की एक प्रतिलिपि 'ढाई दिन का झोंपड़ा' के समस्त पुरवासियों को सादर भेंट रूप में रखी मिली।

बुन्देलखण्ड के उस अंचल में अब भी यह किम्वदन्ती है कि जगनिक ने जहां बैठकर इस वीररस-प्रधान महाकाव्य आल्हखण्ड की रचना की थी वहां पक्षी प्रातः-सायं उसी छन्द-स्वर में चहकते सुनाई देते हैं जिसमें उनके महाकाव्य का यह खण्ड आज लगभग एक हजार वर्ष बाद भी समस्त उत्तर भारत के गांव-गांव में गाया जाता है।

° ° °

हमारे उत्कृष्ट प्रकाशन

उपन्यास

आभा	: आचार्य चतुरसेन
मोती	: आचार्य चतुरसेन
धर्मपुत्र	: आचार्य चतुरसेन
बीते दिन	: जैनेन्द्रकुमार
त्यागपत्र	: जैनेन्द्रकुमार
बड़ी-बड़ी आँखें	: उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
बर्फ का दर्द	: उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
भूल	: गुरुदत्त
वनवासी	गुरुदत्त
छोटी-सी बात	: रांगेय राघव
कुलटा	: राजेन्द्र यादव
रात और प्रभात	भगवतीप्रसाद वाजपेयी
गीता	यशपाल
धरती की आँखें	लक्ष्मीनारायण लाल
स्वयंवर	सत्येन्द्र शरत
एक स्वप्न, एक सत्य	यज्ञदत्त
जाल	मन्मथनाथ गुप्त
संकल्प	हिमांशु श्रीवास्तव
क्रान्तिकारी	अनन्त गोपाल शेवड़े
पारापरी	देवीप्रसाद धवन
हम सब गुनहगार	राधाकृष्ण प्रसाद
एक गधे की आत्मकथा	कृश्न चन्दर
गद्दार	कृश्न चन्दर

एक मशाल : अमृता प्रीतम
डाक्टर देव : अमृता प्रीतम
कर्मि : अमृता प्रीतम
नीना : अमृता प्रीतम
मृगतृष्णा : नानकसिंह
...र की पुकार : ख्वाजा अहमद अब्बास
आनन्दमठ : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
अधिकार : प्रेमेन्द्र मित्र
शिकारी : बनफूल
हरकारा : ताराशंकर बंद्योपाध्याय
दो बहनें : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
जुदाई की शाम : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
बहूरानी : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
आंख की किरकिरी : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
गोरा : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
देवदास : शरत्चन्द्र
चरित्रहीन : शरत्चन्द्र
पंडितजी : शरत्चन्द्र
बिराज बहू शरत्चन्द्र
गृहदाह : शरत्चन्द्र
श्रीकांत : शरत्चन्द्र
शेष प्रश्न : शरत्चन्द्र
संघर्ष : चेखव
प्यार की जिन्दगी : टॉल्स्टॉय
प्रेम या वासना : टॉल्स्टॉय
पहला प्यार : तुर्गनेव
सागर और मनुष्य : अर्नेस्ट हेमिंग्वे
छलना : गोर्की

प्रेमिका	:	लिन यूताङ्
पेरिस का कुबड़ा	:	विक्टर ह्यूगो
ऊंचे पर्वत	:	स्टेनबेक
एक अनजान औरत का खत	:	स्टीफेन ज्विग
जुआरी	:	दॉस्तॉवस्की
कलंक	:	नैथेनियल हॉथॉर्न
मुक्ता	:	सत्यकाम विद्यालंकार
अधूरा सपना	:	अनन्तगोपाल शेवडे
कलाकार का प्रेम	:	ठा० राजबहादुरसिंह
विषवृक्ष	:	बंकिमचन्द्र
शहीद	:	मुल्कराज आनन्द
निशी	:	बलवंतसिंह
ज्वालामुखी	:	मन्मथनाथ गुप्त
गजरा	:	जयन्त

कहानी

पंचतंत्र	:	आचार्य विष्णुशर्मा
पतिता	:	आचार्य चतुरसेन
रहस्य की कहानियां	:	एडगर एलन पो
काबुलीवाला	:	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
बंगला की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	:	राधेश्याम पुरोहित
उर्दू की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	:	प्रकाश पंडित
संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	:	बालकृष्ण एम० ए०
घोंसला	:	किशोर साहू
धुएं की लकीर	:	किशोर साहू
एक पुरुष : एक नारी		राजेन्द्र यादव - मन्नू भंडारी
मंझली दीदी : बड़ी दीदी	:	शरत्चन्द्र
बिन बुलाए मेहमान	:	प्रकाश पंडित